वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या
काल नं०
खण्ड

अत्याचार

या

समाज की आग

[सामाजिक-नाटक]

लेखक—

श्री भगवत्स्वरूप जैन, 'भगवत्'

प्रकाशक—

बसन्त कुमार जैन 'कुसुमाकर'

मूल्य आठ आना

सजिल्द दश आना

मिलने का पता—
बसन्त कुमार जैन 'कुसुमाकर'
श्री भगवत-भवन पुस्तकालय,
एत्मादपुर (आगरा)

पहिली बार

All Right Reserved.

No company or dramatic club is permitted to stage this drama without the permission of the auther They may be permitted on, the condition, when theyare not getting any profit by selling the tickets

Dated
21-10-36

B S Jain
auther

सन् १९३७

मुद्रक—
बा० शिवनारायन अग्रवाल
'विजय प्रेस' आगरा।

दो शब्द

"परिचय में है इतना यथेष्ट—
मैं भी हूँ प्रभु का एक-दास !"

न मै नाटककार हूँ—न कवि, न लेखक हूँ—न समालोचक ! पर इन सब का थोड़ा--प्रेमी अवश्य हूँ ! बस, इन्हीं दो-शब्दो मे मेरा--परिचय निहित है !

जहाँ तक मै समझता हूँ--उपन्यास लिखने से नाटक लिखना कहीं कठिन है ! वह इसलिए कि—उसमें केवल एक व्यक्ति के मन और मस्तिष्क को उलझाना पड़ता है, और इसमें सैकड़ों, सामूहिक व्यक्तियो के योग्य, एवम् रुचिकर और शिक्षाप्रद बनाने का प्रयत्न करना होता है !

न मेरे मन मे लालसा ही थी, न विचार ! कि मैं नाटक लिखूँ ? पर मेरे पूज्य पितृव्य बा० जुगलकिशोरजी की इच्छा हुई, उन्होने आदेश दिया, प्रेरणा की; कि कुछ लिखो ! मैंने स्वीकार कर लिया, इसके बाद ..... !

मैंने 'कुछ' लिखना प्रारम्भ किया, क्या लिखा ?--यह आपके सामने है ! एक बात और कह दूँ--वह यह कि यह मेरा प्रथम प्रयास है ! और उस पर भी मौलिक ही—स्वतंत्र ही ! मैंने किसी की जान बूझकर छाया नही ली ! हाँ, किसी देखे हुए पुराने खेल की स्मृति यदि प्रघटित हो पड़ी हो--तो मै वैसी दशा मे किसी का भी आभारी बनने के लिए तैयार हूँ !

" .....यह नाटक तो क्या जो भी है आप जाने ? इसमे मैंने किसी प्राचीन पराक्रमी राज्य-कथा को नही दोहराया है ! न मेरा उद्देश्य ही पुरानी-अर्जित विद्या का, रोथ करने का रहा है !--जो कुछ लिखा है--आये-दिन होने वाली घटनाओ का वर्णन मात्र है ! नही कह सकता मै अपने-भावो को प्रघट कर सका हूँ या नहीं.....?

पर मेरा खयाल है—शायद गलत हो—कि अब वीरता का ही पाठ पढ़ाने का जमाना नहीं, जमाने की मौजूदा हालत से उसे वाक़िफ़ कराना कही ज्यादह प्रभावनीय हो सकता है !

भाषा के विषय मे कहूँ--जान-बूझकर पँच-मेल रक्खी गई है ! बल्कि कहना चाहिये--रखवाई गई है ! जो लोग—विशुद्ध साहित्यकता इसमे देखना चाहे--कृपया वह कष्ट न करें.....!'

अन्त मे निवेदन करूँगा--यह एक अपढ़ की स्वतंत्र और प्रथम कृति है ! ऐसा विचार कर क्षमा प्रदान करे !

'भगवत्-भवन'
ऐत्मादपुर
ता० ३-१२-३२

'इत्यलम्'

स्नेहाधीन--"भगवत्"

'समाज की आग' पर—

नट धातु से नाटक शब्द बनता है, जिसका साधारण अभिप्राय स्टेज पर से कल्पित ऐक्टरों द्वारा जनता को गद्य-पद्य में किसी के गुण-व-दोष दिखलाकर उसे शिक्षा देना, अथवा मनोरञ्जन कराना है! उपन्यास केवल पढ़ा जा सकता है, नाटक में दोनों ही बातें हैं! नाटक-पौराणिक-ऐतिहासिक-और-कल्पित भेद से तीन प्रकार के होते हैं!

'अत्याचार' उर्फ 'समाज की आग' एक कल्पित नाटक है। इसमें—वृद्ध विवाह सम्बन्धी दर्दनाक दृश्य देखकर प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के दिल मे दर्द हो उठेगा! निश्चित धारणा हो सकती है कि अगर पापी पिता अपनी कन्या को किसी वृद्ध के गले मढ़ना चाहता है, तो कन्या का धर्म है कि असहयोग का खाँड़ा अपने हाथ ले, और जीते-जी वृद्ध के साथ शादी न करे!

इसके अतिरिक्त—नर-पिशाच पूँजीपति किस प्रकार अमानुषिक अत्याचार करते हैं? बड़े-घर मे कन्या का पाणि-ग्रहण कर नाम के भूखे—अपनी नाक ऊँची रखने के लिए उसके जीवन को किस प्रकार बर्बाद करते है? अमीरों के पुत्र कुसंगति के कारण कितने पतित और नीच बन जाते हैं? और ईश्वर पर विश्वास रखने वाला सच्चरित्र मनुष्य किस तरह अन्त में सुख प्राप्त करता है? आदि।

इस नाटक के लेखक श्रीयुत बा० भगवत स्वरूप जी ने इन बातों पर अच्छा प्रकाश डाला है। और उन्हे सफलता भी

मिली है। पात्र और पात्रिकाओं का चरित्र चित्रण अच्छे ढंग से किया गया है।

'भगवत्' जी की यह प्रथम कृति होने पर भी इस नाटक की भाषा सजीव है! उसमें ओज और माधुर्यता का बहुत कुछ प्राधान्य है। लेखक की अवस्था और योग्यता का विचार करते हुए नाटक की रचना बहुत ही अच्छा हुई है। इसके लिए हम लेखक को हृदय से बधाई देते है! भगवान 'भगवत्' जी की लेखनी को वज्र की लेखनी बनादे!

'लोक-मित्र' आफिस
फीरोजाबाद
ता० २८-७-३६

(साहित्याचार्य कविरत्न, विद्याभूषण, सहित्य शास्त्री)
—पं० सुरेन्द्रचन्द्र जैन 'वीर' सम्पादक
'लोकमित्र' मासिक

मेरी धारणा

श्रीयुत् भगवत् स्वरूप जैन "भगवत्" द्वारा रचित यह 'अत्याचार' या 'समाज की आग' नामक सामाजिक नाटक देखा--मेरी धारणा है कि प्रस्तुत नाटक पठनीय है, सुन्दर है; और है-अभिनय के लिये सफल कृति ! इसमें वास्तविक पतित-दशा का एक सजीव चित्र है, जो दर्शकों के हृदयों पर अंकित हो सकता है।

लेखक ने समाज के जिस अवाँछनीय अंगपर प्रकाश डाला है, वह अनुकरणीय है ! और .....! वस्तुतः एक शब्द में सफलता प्राप्त की है।

अपने प्राथमिक प्रयास मे लेखक ने जिस योग्यता का परिचय दिया है, वह सराहनीय है ! उसका भाव, भाषा; पात्र विषयक सुचारु योजना, अभिव्यंजक शैली सब-कुछ उज्वल भविष्य की द्योतक है।

अत्युक्ति नहीं कि नाटकों के नाम पर बिकने वाले नाटकों से यह कहीं श्रेष्ठ है।

मैं आशा करता हूँ हिन्दी-संसार इसका यथोचित आदर करेगा ! और रसिक-समाज मंच पर अभिनय कर मनोरञ्जन के साथ-साथ समाज-सुधार मे समर्थ होगा।

अपनी सद्इच्छा के साथ--

आर० पी० शुक्ला

सैक्रेट्री ड्रैमेटिक क्लब

एत्माद्पुर (आगरा)

ता० २५-५-३६

पात्र-सूची

नंबर	अभिनेता—	परिचय—
१	रामदास...............	एक बूढ़ा धनवान सेठ !
२	ज्ञानचन्द्र...............	आत्माभिमानी रामदास का कर्ज़दार !
३	मिष्टर नरेन्द्र,.....	रामदास का पुत्र !
४	प्रेमचन्द	नरेन्द्र के—
५	रमेश	स्वार्थी और—
६	विनोद	लम्पट—
७	आनन्द	मित्र !
८	प्रकाशचन्द्र...............	ज्ञानचन्द्र का सच्चा मित्र !
९	जीवनचन्द्र...............	साधारण प्रकृति के मनुष्य !
१०	प्रभाचन्द्र.......	जीवनचन्द्र के पुत्र, ज्ञानचन्द्र के दामाद !
११	दुर्जनसिंह...............	लम्पटी दारोगा !
१२	सिपाही, डाकू दल, जज, वकील, असेसर, डाक्टर, कम्पाउन्डर नौकर ! इत्यादि	परिचय— स्पष्ट ! ?
	अभिनेत्रियाँ—	
१	शारदा	ज्ञानचन्द्र की—
२	विनोदिनी	पुत्रियाँ !
३	शान्ता...................	नरेन्द्र की स्त्री !
४	सखियाँ...............	गायकाएं !

अत्याचार

श्री भगवत स्वरूप जैन "भगवत"

समर्पण

स्वर्गीय बा० जुगलकिशोर जी की
पुण्य-स्मृति के प्रति—

आदेश तुम्हारे पर मैंने—
था लिखा, मोद मन मे भरकर !
दुर्भाग्य ! न मैं कर सका भेट—
इसको सजीव कर-कमलो पर !!
अब बहुत दिनो के बाद आज—
संकुचित-हृदय से आता हूँ !
स्मृति को सुदृढ़ बनाने हित—
सेवा मे इसको लाता हूँ !!
जैसा भी कुछ है प्रस्तुत है—
रस-मय है, या रस-वर्जित है !
श्रद्धा मे सादर प्रेम सहित—
यह भेंट सहर्ष समर्पित है !!
आशा है उसी चाव से तुम—
इसको सप्रेम अपनाओगे !
अपने भ्रातृज का निश्चय ही—
साहस, उत्साह बढ़ाओगे !' !!

तुम्हारा—'भगवत्'

यह पुस्तक मैंने बहुत-दिन पहले लिखी थी, उस समय यह धारणा नहीं थी कि कभी यह छपेगी भी; पर अब मेरे लिये इसकी महत्ता यों अधिक होगई है कि यह मेरे पूज्यवर के आदेश का चिन्ह-स्वरूप है।

मैं स्वयं अनुभव करता हूँ-कि इसमें बहुत कुछ त्रुटियाँ है। पद्य भाग भी ऐसा ही है। पर.....मैं नहीं चाहता कि इसमें कुछ भी फेर-फार हो, संशोधन हो। अतः ज्यों-की-त्यों प्रकाशित करने के लिए मेरा आग्रह है।

—"भगवत्"

श्री 'भगवत्' जैन लिखित !

अत्याचार !

या—

समाज की आग

सामाजिक—नाटक !!!

अत्याचार | ना ट क | या— समाज की आग

प्रथम--अंक !

पहला दृश्य

(स्थान--रंगभूमि सखी-मण्डल का सम्मिलित गायन)

जग-दुख-दल, दलनहार, अतुल-ज्ञानधारी···! टेर !
कपट-क्रोध-मदन-प्यार ! कर रहे हृदय प्रहार !
भूलगये सब विचार—बन गये अनारी···!
अधम, पतित जन अनेक ! पार किए दे विवेक !
दीनबन्धु, विनय-एक—सुनहुँ, सौख्यकारी···!
'भगवत्' सत परम वेश ! हरिये जगत-जन कलेश !
डूबत है अखिल देश, आवो कष्ट-हारी···! जग०

[प्रस्थान]

❀ पटाक्षेप ❀

दूसरा दृश्य

(स्थान--सेठ रामदास का मकान, मनोहारी सजावट हो रही है ! झाड़-फानूश, चित्र, वगैरह-वगैरह ! ऊंची गद्दी पर मसन्द के सहारे सेठजी बैठे हैं ! नीचे की तरफ़-- ज्ञानचन्द बैठा करुण-दृष्टि से सेठजी की ओर निहार रहा है। बातें चल रही हैं।)

रामदास--(सगर्व) क्या तू नहीं देखता कि सोलहो-आने तू मेरे कब्जे मे है ?-तेरी भलाई, मेरी बात मान लेने मे है ! तेरी इज्ज़त मेरे हाथ मे है ! और तेरा जीना-मरना, मेरी दया और अदया पर निर्भर है ! मै चाहूँ-तुझे धनकुबेर बनादूं, या चाहूँ दर-दर का भिखारी बना, दाने-दाने को मुहताज करदूं ।

ज्ञानचन्द--(हाथ जोड़कर) सत्य है सेठजी ! सब-कुछ समझता हूँ ! मै कृतघ्न नहीं बनना, आपका अहसान मेरे सिर पर है। आपकी दया मेरी रक्षा का कारण हुई है। आपकी सहन-शीलता मेरी इज्ज़त के लिए है ! आपकी सेवा को इस दास को हरदम जान हाज़िर है।

रामदास--फिर, फिर-आज्ञा न मानने का कारण ?

ज्ञानचन्द--कारण ?--कारण यही कि 'आज्ञा' अनुचित है ! वज्र की तरह कठोर है, तलवार की तरह निर्दय है, और आग की तरह दाहक है। उसका सुनना भी मेरे लिए भयंकर है ! मृत्यु-दण्ड से बढ़कर है !!

रामदास--(समझाने के तौर पर) ज्ञानचन्द ! नादान न बनो, विचार करलो, देखो मैं, तुम्हारे हित की कहता हूँ '--

भलाई और इज्जत इसी में है कि अपनी पुत्री 'शारदा' का मेरे साथ विवाह करदो ! क्या ? तुम नहीं जानते, मैं कितनी वक़त रखता हूँ, भारी विभव का एक-मात्र अधिकारी हूँ ! मेरी कृपा-दृष्टि से 'दरिद्री' राजा बनता है, और क्रुद्ध-दृष्टि से जमीन कांप जाती है, आसमान थर्रा उठता है, दुश्मन भस्म हो जाता है, और...!

ज्ञान०---'जानता हूँ ! सब कुछ जानता हूँ कृपानिधान ! आपकी प्रतिष्ठा, आपकी कीर्त्ति, संसार में व्याप्त है ! आपके पास धन-राशि परिपूर्ण है !! लेकिन······!'

राम०---(बात काटते हुए) क्या खाक जानते हो ?-फिर भी शादी में इन्कार ! मेरे यहाँ कमी किस बात की है।--मोटर, घोड़े, बग्घी, टम-टम, फिटन, सभी-कुछ हैं। क्या तुम्हारी लड़की दुखी रह सकती है ? बताओ तो ? चुप क्यों हो ?

ज्ञान०---(उदासी के साथ) सब समझता हूँ सेठजी ! परन्तु···

राम०- फिर भी परन्तु---इसका कारण ? वजह ?---सबब ?

ज्ञान०---वही सबब जो सच्चा और साफ है, लेकिन स्वार्थ और लालच जिसके खिलाफ है।, हां ! ··वही कारण ? जो वस्तुतः नेक है, परन्तु जिसके विरुद्ध मे अविवेक है।

राम०---(जिज्ञासा के साथ) वह क्या, उसका मतलब ?

ज्ञान०---यही कि--

'नर्क-दुख से भी कठिन है क्लेश की सन्तापना,
वृद्ध को देना सुता है कष्टकारी भावना !
विद्वान हो, वय-योग्य हो, 'वर' वह प्रशंसा योग्य है-
फूस-कौड़ी भी न हो पर--कर सके जो पालना !!

राम०--(हँसने का भाव दिखाते हुए) वाह ! वाह !! कैसा अच्छा कारण है। बूढ़ा हो तब न ? अरे ! अभी से बूढ़ा बना दिया, खूब !--

'वृद्ध कैसे बन गया मैं भाग्य भी रूठे नहीं,
बाल काले हैं अभी तक दांत भी टूटे नहीं।

ज्ञान०--नहीं सेठजी ! यह बात आपको शोभा नही देती, उस ना-समझ, नादान-लड़की के साथ पाणि-गृहण करना, सरासर अनमेल विवाह है ! वही अनमेल-विवाह जिसके कारण आज भारत-वर्ष मे सैकड़ो जीवित-दम्पत्ति अपने को मुर्दा मान रहे हैं। और स्वर्ग-से सदन को श्मशान जान रहे हैं, कामुकों की नीच-प्रवृत्ति समाज को रसातल की ओर ढकेल रही है। फलतः भारतीयता की आड़ मे नीचता खेल रही है। परन्तु,--फिर भी--

सदाक़त छिप नहीं सकती, कभी झूँठे उसूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज़ के फूलों से ॥

राम०--(व्यंग से) कैसी सदाक़त ? कैसी खुशबू ?

ज्ञान०--(स्पष्ट रूप से) यही, नक़ली लगे हुए दाँत ! और खिज़ाब की कृपा से काले हुए--बाल !

राम०--नही, नही, यह बात नही, अब वह जमाना नहीं रहा !- उम्र-मापक चिन्हो के अब दो-दुश्मन पैदा हो चुके हैं।--पाइरिया और नज़ला ! जवानी मे ही दांत उखड़ जाते हैं, बाल सफेद हो जाते हैं, परन्तु इससे वह बूढ़े नही बन जाते, यह सब तो एक रोग है।

ज्ञान०--मगर फिर भी--

प्रेम छिपै नहीं यत्न किए बहु जीभ छिपै नहीं पान चबाए,
अग्नि छिपै नहीं वस्त्र ढकै अरु झूँठ छिपै नहीं बात बनाए।
ज्ञान छिपै नहीं मूर्ख बनें अरु भाल छिपै न भभूति रमाए,
लाल छिपै नहीं कूड़न में अरु आयु छिपै नहीं मूँछ रँगाए।

राम०—खैर कुछ भी सही, तो अब क्या विचार है ?

ज्ञान०—'वही विचार है जो हर एक 'पिता' कहलाने वाले का कर्त्तव्य हो सकता है ! वही विचार है जो दयावान का भोली, मूक 'गऊ' के साथ होता है। वही विचार है जो सराहणीय और आदरणीय समझा जा सकता है।

राम०—(गम्भीरता से) तो क्या धनवान 'वर' के साथ कन्या का विवाह करना पिता का कर्त्तव्य नहीं है ?

ज्ञान०—नहीं, नहीं, वह विवाह नहीं, बूढ़े धनवान वर के साथ कन्या की शादी करना, अपनी प्यारी पुत्री को—अत्याचार की वेदी पर—पिता कहाने वाले कसाई द्वारा बलिदान करना है। योग्य वर के साथ कन्या का विवाह करना पिता का पहिला कर्त्तव्य है !—विवाह किया जाता है वर के साथ, न कि जायदाद और धन के साथ।

राम०—(दूसरे ढंग से) अच्छा तो समझ लिया, तुम्हारे भाग्य में—धनवान होना नहीं बदा है। याद रक्खो, अब वह जमाना नहीं रहा, अब चन्द चाँदी के टुकड़ो के बलपर संसार की अच्छी-से-अच्छी विभूति प्राप्त हो सकती है। मगर यह तुम्हारा घमंड ! यह अभिमान······!
(क्षणभर चुप रहकर) खैर ! मेरे [illegible] पांच हज़ार रुपया तुम्हारे ऊपर हैं। उसके लिए क्या कहते हो ?

ज्ञान०—(स्वतः) आह ! परमात्मा, रक्षाकर ! (प्रकट) सेठजी, कुछ दिन और सब्र कीजिये, जल्दी ही तुम्हारे रुपयों का इन्तजाम कर, अदा करूंगा ! परन्तु—कुछ दिन के लिए दया चाहता हूँ। जब तक मेरा भाग्य-सूर्य दुर्दिन रूपी बादलों से ढका हुआ है, तब तक के लिए विवश हूँ। मेरा हृदय इस विवशता के लिये दुखित है, चिन्तित है; मगर बात-फिलहाल काबू से बाहर है। अतः क्षमा !

राम०—नहीं, मैं अधिक नहीं मान सकता, लेने का हर एक सवाल है; और देने के नाम पर हमेशा ही टाल है। कहो तो आखिर यह क्या हाल है ?

ज्ञान०—(आधीनता से) नहीं सेठजी ! यह आपका एकदम झूंठा खयाल है ! पर तु .... हाँ ! इस समय मेरी हालत सचमुच दर्दनाक है और वे मिशाल है।

राम०—मैं, कह चुका एकबार-दो-बार नहीं, सैकड़ों बार !—मगर—

'रुपये न दिये लाकर बस हाथ ही जोड़े,
चलते नहीं देखे हैं कहीं कागजी घोड़े !

कहीं से लाओ मैं नहीं जानता, मुझे चाहिये अपने रुपये—व्यर्थ की बातें नहीं ! समझे ?

ज्ञान०—(कांपकर) समझा, परन्तु सेठजी ! मैं आपका एक गरीब कर्जदार हूँ, मेरी तरफ यदि ऐसी निगाह रखियेगा, तो मर जाऊँगा, सचमुच प्राण त्याग दूंगा। (पैर पकड़ कर) बस, कुछ दिन के लिये और दया

कीजिये, यही प्रार्थना है! यही विनय है !! यही निवेदन है !!!

'तुम्हारा द्रव्य देने में मुझे, इनकार ही कब है,
निबाही आजतक जैसे, वही अब भी मुनासिब है !'

राम०--(क्रुद्ध-दृष्टि से) बस, बस, मैं अब मीठी-मीठी बातें सुनना नहीं चाहता ! भलाई इसी में है कि कुल रुपया अदा करो ! वरना जेल..... !

'दया पानेकी ख्वाहिस को तहे दिल से विदा करदो,
भलाई है इसी में अब कि कुल रुपया अदा करदो !'

ज्ञान०--(हाथ जोड़कर) दया ! दया !! सेठजी, दया, ग़रीब पर दया करो !--

'दया ही धर्म है सुखकर दया ही मुक्ति साधन है,
दया संसार की शोभा, दया ही श्रेष्ठ जीवन है !'

राम०--दया ? अच्छा तीन दिन की मुहलत देता हूँ, जाओ ! रुपया लेकर आओ, अगर तीन दिन मे भी रुपये का इन्तजाम न कर सके तो समझ लेना-रिहाई न होगी।

[दोनों का भिन्न-भिन्न दिशाओं को प्रस्थान]

❀ प टा क्षे प ❀

तीसरा दृश्य

(स्थान--सेठ रामदास के पुत्र मिस्टर 'नरेन्द्र बाबू' का बैठक-खाना, कुर्सियां पड़ी हुई हैं। सामने मेज रक्खी है। टायमपीस, शराब की बोतलें, पैग, फूलदान वगैरह रक्खे हैं। यूरोपियन-ड्रेस मे मिस्टर नरेन्द्र बैठे हुए हैं।)

मि० नरेन्द्र--(स्वतः) लोग कहते हैं कि रुपया पैदा करो !--चोरी करो, डाका डालो, जुआ खेलो, सट्टा करो, जेब काटो, गर्ज़ यह है कि रुपया पैदा करो ! मगर मेरा हिसाब बिल्कुल·····इसके खिलाफ़ है। वह भी ऐसा नहीं, एकदम आसान और साफ़ है ! न कोई दिक्कत न आफ़त ! अरे दोस्त ! जब होगी पास मे ज़र, तब ज़रूर होगा चोरों का डर ! और जब सरकार देखेगी कि है मालदार बसर, तब हाउसटैक्स, वाटर टैक्स, इनकम टैक्स वगैरह हज़ारो लगा डालेगी कर ! गर्ज़ यह कि हर्गिज न रह पाओगे बे-फिकर ! तब भला मरने मे क्या रह जायगी कसर ? और किस काम आवेगी ज़र ! इसलिए·····मुनासिब और यही है बहतर, कि हो अपने पास मे ज़र-अगर ! तो ऐसो आराम मे ज़रा भी न रक्खे कसर। परमात्मा न करे, अगर न रहे--पास मे ज़र ! तो लेकर जहां तक हो कर्ज़, मौज़ से जिन्दगी करै बसर !! नोटिस, नालिस, गिरफ्तारी वग़ैरह का ज़रा भी हो डर, तो फौरन

से पेश्तर लेकर 'इन्सोल्वैन्सी' हो जावे बिल्कुल··· बेखतर ! (टाई को सँभालते हुए) रुपया जोड़ना तो महज़ अक्लबन्दी का दिवाला निकालना है। क्या कहूँ ?--सरासर बे-वकूफ़ी है ! इसलिए बन्दा तो इसकी बरबादी मे ज़रा भी कोताही नही करता, यार-दोस्तो तक की मदद लेना अपना फर्ज़ समझता है। क्यों ? कि·····!

[प्रेमचन्द का प्रवेश]

प्रेम०--(हँसते हुए) अक्खाह ? मिस्टर नरेन्द्र आदाब !

नरेन्द्र--आइये जनाब, आइये जनाब, तशरीफ़ रखिये।

प्रेम०--(कुर्सी पर बैठते हुए) मैने तो ख्याल किया था आप घूमने निकल गये होंगे ! मगर दखता हूँ आप अब तक बैठे हुए है, आखिर मामला क्या है ? माइडियर नरेन्द्र !

नरेन्द्र--कुछ भी तो नहीं, ज़रा यो ही बैठा रह गया ?

प्रेम०--'ऊँहुक ! मै समझता हूं कि कल जो पोचसौ रुपया पहिले दाव मे ही हार गये थे, यह उसी का मातम मनाया·····।

नरेन्द्र०--लानत है तुम्हारी समझ पर ! अरे दोस्त, ऐसे तो अक्ल के छकड़े कोई दूसरे ही होंगे ! मगर तुम भी खूब हो-वर्षों मेरे साथ रहे पर समझ न सके कि मैं कौन हूँ ? "बारह बरस दिल्ली रहे पर भाड़ ही झोंका किए" दोस्त मै तो दौलत के पीछे हाथ धोकर पड़ा हूँ। कम्बख्त से पीछा तो छूटे।

प्रेम०--वज़ा है, यही चाहिये, वाह मेरे लायक दोस्त ! क्या बात

कही है ! करोड़ों रुपये की एक ! (शराब की ओर संकेत करते हुए) चलने न दो जाम ?

नरेन्द्र--(पैग देते हुए) लो दोस्त ! लो, बहिश्त का रास्ता, स्वर्ग की सीढ़ी, दौलत की क़ीमती हीरा, और हम जैसे पैदाइसी-शरीफ़ों का अमृत-घूँट ! पियो, जी-भर के पियो मेरे दोस्त !

प्रेम०--(लेते हुए) लाओ, लाओ--ऐशो आराम की कुंजी, मस्ती की रानी, आंखों की पुतली, प्रेम का प्रसाद ! (पीते हुए) वाह ! वाह !!

'सारे जहां से इसकी निराली बहार है,
ज़िन्दादिली का एक यही इश्तहार है!'

[रमेश, विनोद, और आनन्द का प्रवेश]

रमेश०--अरे ! यहां तो मज़लिस लगी हुई है ! क्यों मिस्टर नरेन्द्र क्या हम लोगों का भी इन्तजार नहीं ?--(प्रेम० से) क्यों दोस्त यों-लुक छिपकर बग़ैर हम लोगों के हो ..... !

नरेन्द्र--(नशे के झोंक में) मेरे दोस्तो ! पियो, खूब पियो, जी-भर के पियो।

यही है लुफ्त दुनियां का यही स्वर्गों की माया है,
बिना इसके जहां में इस बसर की जिन्दगी क्या है?

(बोतलें खुलती हैं प्याली-पर-प्याली खाली होती हैं।
नोट--इस स्थल पर नृत्य-गान होना आवश्यक है।
गाना स्वेच्छा-पूर्वक कोई भी।)

(सेठ रामदास का प्रवेश, एक ओर खड़े होकर सब माज़रा देखते हैं। परन्तु उपस्थित मण्डली के किसी भी व्यक्ति का ध्यान इनकी ओर नहीं जाता—)

राम०—(करम ठोंककर) अफसोस ! मेरी मेहनत की कमाई का यह दुरुपयोग ! मैं डाटकर, डपटकर, नालिस कर धन्धाकर, रुपया पैदा करता हूँ। और यहाँ इस तरह बरबाद होता है ?

विनोद०—(बिना देखेही) कौन कम्बख्त आगया जो सूम की तरह रोता है।

राम०—(बात पर बिना लक्ष दिये ही) आह ! परमात्मा अब क्या होगा ?

प्रेम०—वही होगा, वही होगा, जो किस्मत में लिखा होगा !

राम०—कौन, प्रेमचन्द्र ! यह क्या मामला है ?

सब कोई—(डरकर) अरे राम, यह कौन बला है ?

[सब कोई भाग जाते हैं]

राम०—बेटा नरेन्द्र, यह तुम्हारा क्या हाल है ?

नरेन्द्र—(उपेक्षा से) वाह ! क्या बेढब सवाल है ?—अच्छा तो है !

राम०—अच्छा है, अच्छा है सूर्य को ग्रसने वाला राहु अच्छा है ? क्या साफ सुथरे-नीले आकाश को अपने भयंकर और काले रूप से ढकने वाला-बादल अच्छा है ?—ज्ञान और मनुष्यता को कुचल देने वाला यह 'मद्य-पान' क्या अच्छा है ? कहो, कहो बेटा नरेन्द्र ! क्या मेरी शिक्षा का असर, हृदय से बिलकुल जाता रहा। और क्या हमारे कुल की विचार पद्धति मिट्टी में मिल गई ?

नरेन्द्र—(नशे के खुमार में) मिलगई, मेरे दिल को खुश करने वाली मिलगई ! तबियत को हरी भरी और संग-दिल बनाने वाली औषधि मिलगई ! सचमुच····· मिलगई !!

राम०—अफसोस ! चमकते हुए सितारे को दुराचार के काले बादल ने ढक दिया ! कीर्ति और प्रतिष्ठा के सफेद-दामन को शराब जैसी घृणित-वस्तु ने नापाक कर दिया। मेरी बढ़ती हुई यशस्वी प्रतिष्ठा को इस नीच दुर्व्यसन ने कलंकित बना डाला, मेरे लाड़ प्यार में बिगड़े हुए—जहरीले साँप ने ओह ! मुझे डस लिया ।

नरेन्द्र—बस, बस, चुप रहो—

तुम्हारे व्यर्थ भाषण की मुझे दरकार ही क्या है ?
मेरा अपमान करने का तुम्हें अधिकार ही क्या है ?

राम०—अधिकार ? पिता का पुत्र पर ! है, अवश्य है ! वही अधिकार जो प्रकाश-लोभी पतगो का दीपक पर होता है !—वही अधिकार जो दूध का पानी के साथ होता है। और वही अधिकार जो नाखून का मांस के साथ होता है। नरेन्द्र क्या आँखो की शर्म, हृदय का प्रेम, दिमाग की विचार शक्ति, सब कुछ इस राक्षसी शराब ने बरबाद करदी ?

नरेन्द्र—(रुखाई से) बस, खबरदार ! मैं अब एक भी शब्द सुनना नहीं चाहता ।

"करूँगा मैं वही जो कुछ कि मेरे दिल में आयेगी !
चलूँगा साथ बोतल के यही रास्ता बतायेगी !!"

राम०--क्या मेरा रक्त तेरे जिस्म से निकल गया ?

नरेन्द्र--निकल गया नहीं, बल्कि जमाना बदल गया।

राम०--देख, देख मै तेरे भले की कहता हूँ--शराब की आदत को छोड़दे ! और इन स्वार्थी, लम्पट, दगाबाज मित्रों का साथ छोड़दे।

नरेन्द्र--(स्वगः) उफ् ! उफ् !! मैं यह क्या सुनता हूँ, (प्रगट) बस, बस, चुप रहो, चुप रहो ! वरनः··· !

राम०--क्या पिता के लिये पुत्र से बुरा होगा ? हा ! परमात्मा, क्या इसी का नाम पुत्र-सुख है ?--क्या यही मेरे शरीर का एक अश है ?

[शोकाकुल दशा से प्रस्थान, नरेन्द्र उनकी ओर घूरता रहता है]

* प टा क्षे प *

चौथा दृश्य

(स्थान--ज्ञानचन्द का मकान, ज्ञानचन्द उदास और निराश भाव से बैठा है ! उसकी दोनों पुत्रियां--
शारदा और विनोदिनी इधर-उधर,
दायें-बायें बैठी हैं ।)

शारदा--पिताजी, यह न होगा; चन्द्रदेव राहु के कराल-गाल में दबे हों, और उनकी किरणें प्रफुल्लित और विकसित होकर भूमि पर खेल रही हों ?

विनो०--नहीं, यह कभी सम्भव नहीं, सुधा में जहर मिला हो और वह जीवन-दान दे ।

शारदा--सच तो है ? जब आग ही बुझी हुई है तो प्रकाश कहां से हो ? जब मुर्दा ही है तो सांस कहाँ से हो ?

विनो०--पिताजी ! बताइये तो सही, इस उदासी और निराशा का आखिर कारण क्या है ?

ज्ञान०--कारण ?--कारण उस मुद्रित कमल से पूछो, कारण ? कारण, शेर के पंजे मे दबे हुए हिरण के बालक से पूछो; और ?--और जलते हुए मनुष्य के हृदय से पूछो ।

शारदा--(जिज्ञासा के साथ) आखिर इन पहेलियों का मतलब ? और कहने का सबब ?

ज्ञान०--वही सबब, जो बेवशी और बेकसी की हालत में बयान किया जाता है । वही सबब, जो जिन्दगी से ना उम्मीद होने पर सोचा और समझा जाता है ।

शारदा--क्या सेठ रामदास के रुपयों का तगादा ?

ज्ञान०--नहीं, उससे भी अधिक-भयंकर बात ! धुंए के साथ में

आग की चिनगारी ! तलवार की सुन्दरता के साथ में उसकी तीक्ष्ण-धार।

शारदा--अर्थात् ? .....,

ज्ञान०--नहीं, नहीं मैं वह बात तुम्हें नहीं कह सकता ! अपने धधकते हुए कलेजे की आग से तुम्हें नहीं जलाना चाहता। तूफानों से भरे हुए प्रकम्पित हृदय-सागर में तुम्हें डुबाना नहीं चाहता !! (क्षणभर चुप रहकर) अपने सामने इन कमल-से प्रफुल्लित चेहरों को मुरझाया हुआ नहीं देखा चाहता। शारदा ! हठ न करो, अपने दुखी-पिता को दुखी रहने दो।

शारदा--दुखी रहने दूं ?' अपने परमात्मा तुल्य पिता को ! दुखी रहने दूं ? अपने कर्णधार को !' जन्म देने वाले दयागार को ! नहीं, नहीं, पिताजी यह न होगा।

ज्ञान०--(आवेश मे आकर) यही होगा; जो कुछ कह चुका हूँ वही, वही होगा।

शारदा--(निराशा से) वही होगा,--आह परमात्मा !-पिताजी, आज इस प्रकार की बातें कहने का कारण ?

ज्ञान०--(शान्त होकर) कारण ?--कारण ज़हर की तरह घातक है, अग्नि की तरह दाहक है, और मौत की तरह जान का ग्राहक है।

विनो०--परन्तु-इस पर भी परमात्मा तो सहायक है। जो अखिल विश्व का विघ्न-विनायक है !

ज्ञान०--(हताश-भाव से) है, परन्तु बेकार है। इसलिए कि मुसीबत मे दोस्त भी दुश्मन बन जाते हैं। यही वजह है कि लोग मुसीबत से घबड़ाते हैं। आग से पानी

डालते हैं—तो वह घी की तरह जलता है! प्यारे-से प्यारा भी समय के फेर से गिरगिट की तरह रंग बदलता है।

शारदा—सच है, परन्तु मुसीबत ज़दो का मुसीबत बयान करना भी क्या गुनाह है ?

ज्ञान०—नहीं, नहीं धधकते हुए कलेजे की एक निस्सार और व्यर्थ आह है, जिसका कहना-सुनना फिजूल है।

विनोदिनी—नहीं पिताजी, यह आपकी भूल है।

शारदा—बेशक भूल है! उसका सुनना और पूछना उतना ही आवश्यक है जितना मरने वाले की अभिलाषा को शमन करना, उसको सान्त्वना देना।

ज्ञान०—मेरी प्यारी पुत्रियो! जिद न करो, मेरी उदासी का कारण पूछकर अपने सुकुमार बदन पर उदासी की काली-स्याही न चढ़ाओ! नतीजा कुछ न होगा, सिवा इसके कि रज हो, उदासी अपना दखल जमाए! और जी-घबड़ाए।

शारदा—परन्तु-पिताजी! क्या यह सम्भव है कि जड़ मे कीड़ा लगा हो और वृक्ष हरा-भरा हो?—शरीर मे नेत्रों का अभाव हो और दर्पण मे मुँह देखने का चाव हो'''। क्या यह योग्य है पिता दुखी हो, और सन्तान सुखी रहे?

'रखना भरोसा योग्य है दुख में सदा भगवान का!
प्राण दे दुख मैटना कर्तव्य है सन्तान का!!'

ज्ञान०—(हर्षित होकर) धन्य हो प्रभु! यही सन्तान सुख है!

तुम्हारा इस तरह कहना सभी दुख दूर करता है !
यही सुख तो मुझे आनन्द से भरपूर करता है !!

शारदा ! क्या सुनना ही चाहती हो ? अच्छा सुनो, हृदय पर हाथ रखकर धड़कते और विकल हृदय को सान्त्वना देकर सुनो !—वह पापी नराधम सत्तर वर्ष का बूढ़ा—रामदास तेरे साथ विवाह करना चाहता है ! उफ् ! मेरी प्यारी बेटी को कर्ज को धमकी देकर छीन लेना चाहता है ! मेरे हृदय को, मेरे जीवन को, अन्धकार के गर्त में गिराना चाहता है ! मगर—नहीं, ज्ञानचन्द अपने शरीर में जान रहते, हृदय में जोश रहते, बाहुओं में ताक़त रहते, और परमात्मा जगदाधार की कृपा रहते—अपनी प्यारी पुत्री पर यह अत्याचार कभी न सह सकेगा ।

शारदा—पिताजी, शान्त रहो ! अधीर न बनो ! (स्वतः) आह ! मेरा कैसा दुर्भाग्य है ! मेरे कारण पिताजी कष्ट में है ! मेरा जीवन पिता के लिए सरासर दुख है ! कष्ट है ! और मौत है ।

विनो०—(शारदा से) बहिन ! तुम यह क्या करती हो ? जिस धारा को रोकने का उपाय करती थी, उसी में स्वयं बहती हो ? चलो घर चलो ।

(हाथ पकड़कर ले जाती है)

ज्ञा०—(चौंककर उदासी के साथ) हँय ! यह क्या हुआ ? क्या मैंने आवेश में आकर, जिस बात को छिपा रहा था-वह प्रगट करदी ? (नैपथ्य की ओर देखकर)

शारदा ! भूलजा, भूलजा, मेरे कहे हुए शब्दों को भूलजा ! वह मेरी भूल थी, दुख-भरे दिल की आह थी।

[तेजी के साथ प्रस्थान]

* प टा क्षे प *

पांचवां दृश्य

स्थान—फुलवारी, तरह-तरह के फूल खिल रहे हैं !
नीचे हरी-हरी घास है ! अवर्णीय छटा है !
शारदा और विनोदिनी का
गाते हुए प्रवेश)

गायन

प्रेम का एक बनायेंगी गज़रा—
तज फूलों का हार !
प्रेम का तागा, प्रेम का बन्धन—
प्रेम के फूल हज़ार···!!

प्रेम के रंग में फूल रँगे हों—
कौमल, सुन्दर, सार···!
प्रेम-रसिक-जन पान करेंगे—
प्रेम-मधुप गुँजार···!!
'भगवत्' प्रेम का सुन्दर-गज़रा—
जीवन का शृंगार···!
प्रेम से तब स्वीकार करेंगे—
प्रियतम, प्राणाधार···!!

विनो०—अहा ! प्रेम भी कितना सुन्दर, कितना शक्ति-शाली; और कितना मनोहर शब्द है ! जिस हृदय में इसका बास होता है ! वहां फूट-कलह, ईर्षा द्वेष, और अहंकार का पूर्णत नाश होता है ! परन्तु—आज तो कलह और फूट का राज है। प्रेम दर-दर ठुकराया जाता है। हर जगह द्वेष और अभिमान पाया जाता है।

शारदा—मगर फिर भी तो सुधार का नाम दुहराया जाता है ! उसका गुण-गान गाया जाता है।

विनो०—गाया जाता है ! परन्तु व्यर्थ है ! सिह की सूरत और श्याल का काम ! ज़हर का प्याला और अमृत का नाम ! व्यर्थ है—सुधार का नाम और पाप का प्रचार ! उसी तरह जिस तरह व्यर्थ है आग मे हाथ डालकर मचाना—हाहाकार !!

शारदा—(गंभीरता से) बहिन विनोदिनी, क्या हम भारत-वासियो में प्रेम नही हो सकता ?

विनो०—हो सकता है ! सर्प विष उगलना छोड़दें ! दूध और पानी अपनी घनिष्टता तोड़ दें ! अग्नि शीतलता का आश्रय ले ! और पर्वत ? हवा के साथ आकाश मे उड़ा चले ।

शारदा—सच है बहिन, सच है ! सूर्य पश्चिम की ओर उदय हो, सिंह को मृग के बच्चे का भय हो; मनुष्य को मुसीबत की चाह हो ! और गिरा हुआ रत्न उस दरिया से निकल सके जिसमे पानी अथाह हो ।

विनो०—बेशक यही बात है ! परन्तु·····प्रेम वह वस्तु है जो अन्धकार का पथ-प्रदर्शक दीपक है ! और सारे संसार मे जिसकी झलक है ।

शारदा—है, मगर हृदय की शान्ति भी जिसके लिए परमावश्यक है ! क्या यह वही फुलवाड़ी नही, जो नित्य ही हमारे आमोद-प्रमोद का साधन थी ? परन्तु आज बिना हार्दिक शान्ति के सूना-सान है ! आज यह प्रफुल्लित फूल (फूल को पकड़ कर) त्रिशूल की तरह मालूम हो रहा है ! और यह मस्तानी-खुशबू ? हृदयको झुलसा रही है ! निर्मल पानी का चस्मा, आँखो से पानी निकालने में मदद पहुँचा रहा है ।

विनो०—(आश्चर्य से मुँह देखते हुए) है ! हैं !! बहिन तुम रोती क्यों हो ?

शारदा—(सन्तप्त हृदय से) मेरा रोना, अत्याचारी समाज के लिए है ! मेरा रोना, कसाई के हाथ बिकने वाली गाय की तरह है । मेरा रोना, समाज के बूढ़े-कामुको के लिए है। जिनको भोली बालिकाओं पर अत्याचार करते शर्म नहीं आती ! भगवत्-भजन की आयु में विवाह करते लज्जा नहीं लगती ! जो समाज मे विधवाओ की संख्या बढ़ाकर अनर्थ का किला तैयार कर रहे हैं।

बिनो०—अवश्य, परन्तु--विधवाओ के विवाह का प्रचार कर उस कठिनाई को दूर करने का उपक्रम भी तो कर रहे है।

शारदा—हाँ ! कर रहे हैं, भारत को इ ग्लैण्ड बनाने का साहस! कर रहे हैं भारतीय—आचार-विचार, धर्म-कर्म, रहन-सहन, क्रिया-प्रक्रिया का अभाव ! कर रहे हैं, अपने घडे फोड़ कर मेघ की आशा ! कर रहे हैं, आकाश के फूलो की चाह !

बिनो०—बहिन कैसे ?·····

शारदा—उसी तरह, जिस तरह मूर्ख मनुष्य खून से रँगे कपड़े को खून से ही साफ़ करने की कोशिश करता है। उसी तरह, जिस तरह अन्धा मनुष्य रस्सी के हेतु सर्प पकड़ने की चेष्ठा करता है।

बिनो०—इसका मतलब ?

शारदा—मतलब यही कि समाज की दशा उस नादान कुत्ते के

समान है, जो लाठी के काटने की कोशिश करता है! और मारने वाले की तरफ़ नहीं देखता! समाज के, कुछ लोग विधवा-विवाह के भयंकर पाप को स्वीकार करते हैं परन्तु—विधवाओं की संख्या घटाने की तरफ़ नहीं देखते! वृद्ध विवाह जैसे घृणित और पापमूलक, कुकर्म को नहीं रोकते? सुधार की दुहाई देते है! और देश की धार्मिक मर्यादा, पुरातन रीति-रिवाज को बर्बाद करते हैं!

विनो०—तो क्या विधवा विवाह की आवश्यकता का कारण वृद्ध विवाह ही है? क्या वृद्ध-विवाह ही कुरीतियो की जड़ है?

शारदा—है, और अवश्य है! वृद्ध-विवाह और अनमेल विवाह हीसमाज की छाती पर—नृत्य करने वाले दो-पिशाच हैं। यही अनर्थों की जड़ और देश की अवनति के कारण हैं!

विनो०—परन्तु समाज के वह बूढ़े मनुष्य—जो विवाह करने को तैयार हो जाते हैं—क्यो नहीं सोचते?

शारदा—विनोदिनी! क्या कुए में गिर पड़ने वाला बालक सोचता है? अदालत मे सोचने वाला चोर, क्या चोरी करते वक्त सोचता है? नहीं, नहीं; जिसकी आंखो पर स्वार्थ का जाला पड़ जाता है, जिसके हृदय पर वासना की स्याही दखल जमा लेती है। वह अज्ञ न हो जाता है!—उसे कुछ नहीं सूझता।

विनो०—बेशक यही कारण है! इसीलिए घर में पुत्र, पुत्री और

पुत्र-बधू के होते हुए भी लोग विवाह कर लिया करते हैं, और समाज की नासमझ-सुकुमारियों को विधवा बनाकर—देश को रसातल पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।

शारदा—बहिन, विनोदिनी ! आज मेरे हृदय में समाज के प्रति घृणा है ! तिरिस्कार है !! और है धधकते और सताए हुए हृदय की निकली हुई ज्वाला !!! मुझे संसार भयानक बन की तरह मालूम हो रहा है। मेरा हृदय मानों बार-बार यही पुकार रहा है कि—शारदा ! बूढ़े के साथ बँधने के पहिले, अपने नश्वर-शरीर का इस अत्याचार की विकराल वेदी पर बलिदान करदे।

विनो०—(चोककर) हँय ! यह क्या कहती हो बहिन ?

शारदा—वही कहती हूँ, जो मेरा हृदय कहने के लिए मजबूर करता है। वही कहती हूँ, जो मौजूदा वक्त करने और कहने के लिए ज़ार देता है ! और वही करना चाहती हूँ, जो तूफ़ान से आक्रान्त होकर बीच-सागर मे जहाज़ करता है।

विनो०—(प्रेम से हाथ पकड़ कर) बहिन, बहिन ! मेरी ओर देखो, अपनी विकसोन्मुख आयु की ओर देखो; पूज्य पिताजी की ओर देखो, और उनके कहे हुए शब्दो की ओर देखो।

शारदा—(निराशा से) देख लिया—

दुधारी हाथ में होगी झुका मेरा गला होगा,
यही होगा, यही होगा न इसके कुछ सिवा होगा;

विनो०—बहिन, धैर्य रक्खो, साहस से काम लो।

सताएगा न वह पापी रखो दिल में जरा हिम्मत,
वही होगा, वही होगा जो किस्मत में लिखा होगा।

शारदा—बहिन विनोदिनी ! मेरे लिए अब क्या उपाय शेष है ? आह ! मेरा जीवन मुझे भार हो रहा है।

'न दिलमें ही तसल्ली है न आगे के लिए आशा—
सताएगा मुझे पापी तो उसका भी बुरा होगा ?

[दोनो का एक ओर को प्रस्थान]

* प टा क्षे प *

छटा दृश्य

(स्थान—सेठ रामदास के मकान का एक भीतरी भाग, मिस्टर नरेन्द्र का अपना स्त्री-शान्ता-को ढकेलते हुए लाना)

शान्ता—(धक्का खाकर) आह ! आह !! प्राणनाथ, क्षमा करो, क्षमा करो; दुखिनी-अबला को क्षमा करो !

[पैर पकड़ लेती है]

नरेन्द्र—(डपटकर) हट ! हट !! बदमाश, मूर्खा, चाण्डालिन, दुष्टा, भिखारिन !

शान्ता—जीवन-धन ! तुम्हारे प्रेम की भिखारिन, कृपा-दृष्टि की भिखारिन, और तुम्हारे प्रफुल्लित हृदय को भिखारिन !

नरेन्द्र—शान्ता ! समझले, तेरी इन मोहनी और रँगीली बातोंका मेरे ऊपर कोई असर न होगा ! कमल के पत्ते पर जिस तरह जल नहीं ठहरता, और काले रंग पर जिस तरह और कोई रंग नहीं चढ़ता—उसी तरह मेरे हृदय मे तेरी कोई बात नहीं आ सकती।

शान्ता—मेरे हृदय-धन ! क्या चन्द्रमा से चाँदनी अलग है ? क्या प्रकाशवान सूर्य अपनी किरणों से अलग है ? क्या मनोहर गुलाब सुगन्धि से अलग है ?—नहीं, प्राण-धन ! अपने आधीन पड़ी दासी को न ठुकराओ ! न ठुकराओ !!

नरेन्द्र—(क्रोध और उपेक्षा से) चुप ! चुप !! बदमाश, पगली !—मेरे तड़फते हुए दिलको, जलते हुए कलेजे को जलाने वाली चाण्डालिन चुप हो ! बस, सीधे हाथ से ला,—ला, जल्द····· ला।

शान्ता—स्वामी, क्या माँगते हो ? एक गरीब और दुखित भिखारिन से क्या माँगते हो ?—

जो कुछ है पास में तन-मन, सभी धन तुम्हारा है,
तुम्हें तजकर जमाने में, मुझे क्या और प्यारा है ?

नरेन्द्र--क्या माँगता हूँ ? आनन्द के देने वाली, संसार से उठाकर स्वर्ग मे पहुँचाने वाली--शराब के लिए--जो कुछ तेरे पास हो--दे।

शान्ता--(आश्चर्य से) नाथ ! क्या वह जेवर--जो कल आप लेगये थे--खत्म होगया ? क्या वह एक हजार का स्वर्ण दुर्व्यसन की भेट चढ़ गया ?

नरेन्द्र--चढ़गया ! हाँ उस तेज शराब का नशा चढ़ गया, और उतर भी गया।

शान्ता--उतर गया ? मेरी प्रार्थना और विनय का असर उतर गया।

नरेन्द्र--(जोश के साथ) हाँ, हाँ, उतर गया ! लाती है, या व्यर्थ की बाते बनाकर मुझे देर लगाती है ? कम्बख्त ! आह ! आत्मा विकल हो रही है ! जी-घबड़ा रहा है। सारा संसार सूना दिखा रहा है।

शान्ता--प्राणनाथ ! दया करो; दया करो, इस दुखिया पर दया करो,.....मेरे पास जो कुछ था सब दे चुकी ! केवल यह दुष्ट प्राण बाकी है ! इन्हे... !

नरेन्द्र--शान्ता ! शान्ता !! एकबार फिर सुनो, और साधी तरह जो कुछ हो मुझे दो ! हृदय का आग बुझाने के लिए, शान्ति पाने क लिए ! हँय, तू चुप क्यो है ? क्यो ? क्या विचारती है।

शान्ता--नाथ ! मैं कह चुकी, मेरे पास अब कुछ भी बाकी

नहींरह गया—जेवर, रुपया, पैसा जा कुछ था ! सब इन चर्णों की भेंट चढ़ा चुकी।

नरेन्द्र—(क्रोध से) अच्छा ठहर ! अभी तेरे इन्कार करने का मज़ा चखाता हूँ ! (क्रोध मे आकर शान्ता को जमीन पर पटक देता है ! और उसकी छाती पर चढ़कर) बोल ! बोल !! बतला देती है या नहीं ?

शान्ता—(हाँपते और काँपते स्वर मे) ओह ! ओह !! नाथ, दयाकरो, स्वामी, दया करो ! मेरे पास अब सिवा इन निर्लज्ज-प्राणो के और कुछ नही है। लेलो ! नाथ, इन्हे भी लेलो ! मै चर्णों पर अर्पण करती हूँ—भगवान तुम्हारा कल्याण करें !

नरेन्द्र—(छाती से हटकर) शान्ता ! देख, मेरे बढ़ते हुए क्रोध को और न बढ़ा ! सोते हुए शेर को न छेड़ ! दे ! दे !!

शान्ता—(घुटनो के बल बैठकर) स्वामी ! इन चर्णों की शपथ खाती हूँ ! मेरे पास अब कुछ नही, सारा शरीर जेवर सून्य है, और तिजोरी एकदम खाली है।

नरेन्द्र—(जोश मे आकर) नही है, नही है ? क्या कहती है ? नही है ? (जोर से धक्का देकर) हट ! हट !! मेरी आँखो से दूर हट।

(शान्ता गिर जाती है, मुँह से खून निकलने लगता है)

शान्ता—(पीड़ा से व्याकुल होकर) आह ! आह !! आसमान टूट पड, संसार की दशा देखने वाले सूरज गल-गल

कर नष्ट होजा--मुझे अपने तप्त-रस से भस्म करदे! क्षमाशालिनी, वसुन्धरे! फटजाओ !! फटजाओ !!! मुझे अपनी शरण मे आने दो! मुझ हतभागिनी के भार से अपने वक्षस्थल को मत कष्ट दो!--सुलालो, अपनी विषद बाहुओं के बीच मे सुलालो !! आह! भगवान् आह, आह .....।

[सेठ रामदास का प्रवेश]

राम०--(घबड़ाकर) कौन ? कौन ? शान्ता! क्या हो गया ? तुझे, किस निर्दयी ने मारा ? उफ्! उफ !! यह खून कैसे ?

नरेन्द्र--(झपट कर बीच मे आकर) मैंने मारा है! मैंने मारा है !! कौन है इसका हिमायती ?

राम०--नरेन्द्र! क्या तू पागल हो गया है ?

नरेन्द्र--बस, बस, चुप रहो, जबान को लगाम दो; खबरदार जो मुँह खोला ?

राम०--हँय! यह क्या ? नरेन्द्र, होश मे आ।

शान्ता—(उठकर) पिताजी, आप क्रोध न करिये, इनसे बोल कर अपनी प्रतिष्ठा और गौरव-गरिमा को मिट्टी मे न मिलाइये।

राम०--बेटी शान्ता! क्या इस नर-पिशाच की इतनी हिम्मत जो मेरे मुँह पर मेरा अपमान करे ?

नरेन्द्र--(कड़ककर) बस, बस, जबान सम्भालो! कह चुका, मुझे अब बरदास्त नहीं! चले जाओ, अपना रास्ता देखो!

राम०—पिता का अपमान करने वाले कुपुत्र ! और इस भोली लड़की को सताने वाले-राक्षस, दूर हो ! तेरी जहर-भरी सूरत देखने से विष चढ़ता है, हट ! हट !!

नरेन्द्र—(जोर से) बस, बस, चुप नालायक ।

(रामदास को जोर से धक्का देता है, शान्ता नरेन्द्र के पैर पकड़ती है)

शान्ता—(गिड़गिड़ा कर) नाथ, यह क्या करते हो ? पूज्य पिताजी का यह तिरस्कार ! पुत्र का अपने पूज्य पिता पर यह अत्याचार ! क्षमा करो, क्रोध शान्ति करो स्वामी, शान्ति हो जाओ ।

नरेन्द्र—'हट ! हट !! नीच चाण्डालिन, दूर हो !',

(रामदास उठते हैं, नरेन्द्र फिर भी धक्का देता है । वह गिर पड़ते हैं । नरेन्द्र छाती पर सवार होता है । शान्ता नरेन्द्र के पैर पकड़ती है, दया की प्रार्थना करती है; नरेन्द्र क्रोध भरी निगाह से देखता है)

❀ पटाक्षेप ❀

सातवां दृश्य

(स्थान--सेठ रामदास का वही मकान, सेठजी बैठे ज्ञानचन्द्र से बातें कर रहे हैं)

राम०—(शान्त-भाव से) देखो ज्ञानचन्द्र ! नादान बनने से कोई लाभ नहीं, जरा अक्ल पर ज़ोर दो, दिमाग़ से काम लो ! समझदारों की तरह बातें करो, पहिले अपने फ़ायदे-नुकसान को देखो, पीछे और किसी को; समझे ?

ज्ञान०—समझा ! परन्तु सेठजी, इसके लिए मुझे मजबूर न कीजिये । इस ग़रीब-ग़रीब को अपनी शरण में रहने दो; हाँ ! मैं समझता हूँ फ़ायदे और नुकसान को, अपमान और सम्मान को ! कर्त्तव्य और ज्ञान को ! किन्तु मेरे प्राण रहते ! मुझे यह कठिन आज्ञा मत दो, शरण में पड़े हुए को न सताओ ।

राम०—(उपेक्षा से) हूँ, फिर वही बात ?

ज्ञान०—हाँ, वही बात, जो नेक और उचित है ।

राम०—परन्तु नादानी से खाली नहीं है ! ज्ञानचन्द्र ! देखो मैं तुम्हें बार-बार समझता हूँ—तुम शारदा की शादी मेरे साथ करदो, इससे तुम्हारी भलाई ही होगी, बुराई नहीं !

ज्ञान०—क्या अपनी प्यारी पुत्री को गोद में बिठाकर क़त्ल करदूँ ?—क्या अपने जीवन के सुखरूपी वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दूँ ?—क्या अपने हाथों से नेत्र फोड़लूँ ? नहीं, नहीं; ज्ञानचन्द ऐसा न करेगा ! अपनी पुत्री को अपने देखते, सौभाग्य-हीन नहीं बना सकेगा ।

(हाथ जोड़कर) सेठजी, दया करो, ऐसी कठिन आज्ञा न दो ! मुझे संज्ञा-हीन न बनाओ !

राम०--(प्रेम से) देखो ज्ञानचन्द ! एकबार फिर सोचो, ज़रा बिचारो, मेरी समाज मे क्या इज्जत है ? कैसा प्रतिष्ठा है ? लोग मुझे क्या जानते हैं ?

ज्ञान०--क्या जानते है ?--जो ग़रीब है वह ईश्वर जानते हैं। मालदार है वह अपना दुश्मन जानते हैं, चोर और डाकू है वह अपनी शिकार जानते है; जो मतलबी हैं चन्दाखोर हैं, वह उदार जानते है । परन्तु.....मैं अपना भविष्य आपके निमित्त से बिगड़ा हुआ देखता हूँ। जहाँ आप स्वर्ग-सुख का अनुभव करते हैं, वहाँ मैं नर्क-दुख देखता हूँ।

राम०--(स्नेह से) ज्ञानचन्द्र ! पागलो की तरह बकबाद न करो, अपने भविष्य की ओर देखो, आज क्या हो ? कल क्या हो जाओगे ? जो पाँच हज़ार रुपया बाकी है वह छोड़ दूँगा ! और उतने ही रुपये और भी दूँगा ताकि जिन्दगी-भर बैठे आनन्द से गुज़र-बसर हो, न दिक्कत रहे न पैदा करने की फिकर हो !

ज्ञान०--सही है, परन्तु.....।

राम०--(कुछ आशा से) परन्तु के लिए कोई जगह नहीं, क्या तुम नहीं समझते मेरे घर आने पर शारदा को किस बात की तकलीफ रह सकती है ? शारदा ! तुम्हारी पुत्री शारदा--एकदम बदल जायेगी, फटे हुए कपड़ों मे रहने वाली शारदा सोने और ज़वाहिरातों से मढ़ जायेगी।

ज्ञान०--अवश्य, मै जानता हूँ परन्तु.....!

राम०—नहीं, परन्तु····· ! बेकार है, क्या तुम नहीं देखते—यह सब ज़मीन, जायदाद और वे इन्तहा-दौलत, किसके लिए है ! तुम सोचते होगे—कि इस मालजर पर नरेन्द्र का हक़ है ! परन्तु नहीं, मैं उस नालायक को एक-कौड़ी भी देना नहीं चाहता, यह सब दौलत मैं तुम्हारी पुत्री के नाम कर सकता हूँ—बोलो स्वीकार है ?

ज्ञान०—(जोश के साथ) नहीं, इनकार है ! हज़ारबार अस्वीकार है सेठ जी, क्या आप यह नहीं समझते कि नादान-कन्या का परबाबा की उम्र वाले के साथ विवाह देना सरासर अत्याचार है ! और अनधिकार है !

राम०—अनधिकार..?—क्या पिता का पुत्री पर अधिकार नहीं होता ?

ज्ञान०—होता है, परन्तु उचित और योग्य रूप में उपयोग करने के लिए।

राम०—तो क्या पिता का यह कर्तव्य नहीं होता कि पुत्री सुखी रहे ऐसे स्थान पर दे ?

ज्ञान०—(संक्षेप मे) अवश्य, यह तो पिता का पहिला कर्तव्य है !

राम०—हाँ, तब तुम यह नहीं समझ सकते कि संसार मे सुख का—साधन क्या है ?—निश्चय ही कहना होगा कि धन और दौलत !

ज्ञान०—सच है, नास्तिक और मदान्ध-जन ऐसा ही कहा करते है।

राम०--जब धन ही सुख का साधन है तो क्या वह सुख मेरे यहाँ नही है ?

ज्ञान०--हाँ, अगर विवाह का सम्बन्ध धन के साथ है, तो अवश्य ही वह सुख आपके यहाँ विद्यमान है, परन्तु सेठजी, ज़रा विचारिये तो जब आप स्वर्गवासी हो जाँयगे तो मेरी पुत्री किस पर भरोसा करेगी, कैसे कष्टमय-जीवन को धारण करने की शक्ति संचालन करेगी ?--

बिना सुगन्धित-कुसुम चन्द्र बिन रजनी-रानी !
बिना नीर झक, कण्ठ बिना गायक अभिमानी !!
बिना नेत्र नर व्यर्थ, बिना विद्या तन जैसे !
बिना पती संसार सून्य, रमणी को तैसे !!

राम०--ज्ञानचन्द मैने तुम्हे इसलिए नही बुलाया कि तुम्हारा व्याख्याम सुनूँ ? मेरा बुलाने का आशय बस, सीधे शब्दो मे यही है कि शारदा की शादी करने के लिए तैयार हो जाओ, अगर तुम इन्कार करोगे ! मेरा अपमान करोगे ! तो समझलो मैं सख्ती का बर्ताव करूँगा, कहो क्या विचार है ?

ज्ञान०--विचार ? विनय और प्रार्थना के शब्दो में इन्कार है ! सेठजी, यह विवाह की प्रस्तावना नहीं, फांसी का फैसला है। नहीं, नहीं; सेठजी मज़बूर न कीजिये,--दया कीजिये।

राम०--(कुछ सोचकर) खैर जाने दो ! समझ लिया सीधी उँगली घी नही निकलेगा, मगर मेरे रुपये.....!"

ज्ञान०--(बात काटकर) हाँ, मुझे ख़याल है, कुछ दिन और सब्र कीजिये, सेठजी।

राम०--आख़िर उस सब्र की मियाद ?

ज्ञान०--मियाद ? सेठजी इस बिगड़े हुए भाग्य को बस आपका ही आधार है ! इन्तजाम होते ही मय-सूद के आपकी सेवा मे उपस्थित करूँगा। विश्वास कीजिये, एक पैसा भी मैं रखना नहीं चाहता। केवल उस शुभ-घड़ी के आने का इन्तजार है।

राम०--मगर हमे रुपये की बड़ी दरकार है, ज्ञानचन्द अब बहानेबाज़ी काम न आयेगी। रुपया देने का प्रबन्ध करो, यह नहीं हो सकता कि--हमारे रुपया रखो और आनन्द करो।

ज्ञान०--आनन्द ? इस बदनसीब ने तो आजतक आनन्द को नहीं जाना।

राम०--खैर, मुझे इस बहस से मतलब नहीं, मेरा रुपया जल्दी अदा करो--वरनः याद रखो मै सख्ती से काम लूँगा।

[प्रस्थान]

ज्ञान०--(अफसोस के साथ, ऊपर देखते हुए) जगदाधार ! संसार की अखिल-दशा को जानने वाले ईश्वर ! रक्षाकर !! अपने सेवक की पतित-दशा का विचार कर !!!--विश्वम्भर ! कष्ट हर !!

(उदास-भाव से प्रस्थान)

* पटाक्षेप *

आठवां दृश्य

(स्थान—ज्ञानचन्द्र का मकान, शारदा हाथ में ज़हर-भरा प्याला लिए गा रही है।)

गायन

निशदिन राम-नाम जपना !
अरे मूढ़ ! तू व्यर्थ उलझता, यह जग झूँठा सपना !!
सुख-दुख दो हैं खेल निराले,
जिनके पड़ा हुआ तू पाले;
सहता नित-नित हाय ! कसाले—
है सुख, कभी तड़पना ! निशदिन०
जीवन है तब तक है नाते,
दृग मुँदते सब-जन ठुकराते;
क्रूर हृदय बन अगिन लगाते—
पड़ता तन को तपना ! निशदिन०
यह तेरा है, यह मेरा है,
अखिल जगत में यह घेरा है;
यह सब माया का फेरा है !—
तेरा वृथा कलपना ! निशदिन०

झूँठा जग, झूँठी सब माया,
झूँठी यह सुवरन-सी काया;
'भगवत्' इसमें तत्व न पाया—
कर तू कारज अपना !
निशदिन राम-नाम जपना !

शारदा—(घुटने के बल बैठकर) हे ! सर्व शक्तिमान जगदीश्वर ! हे, परमपिता, त्रैलोक्यनाथ ! बस, अब तेरा ही सहारा है ! तेरी ही अनुकम्पा की दरकार है ! नहीं, नहीं; अब मुझे इस—स्वार्थी, अत्याचार, अनाचार और भ्रष्टाचार पूर्ण-संसार मे रहने की इच्छा नहीं है ! करुणेश ! अब अपने ही पवित्र-चरणो में स्थान दो, अपनी ही सेवा का सौभाग्य-प्रदान करो, कृपासिन्धु ! इस दासी की तुच्छ अभिलाषा को पूर्ण करो ।—

"तुही संसार ज्ञाता है तुही आनन्द-दाता है !
कि तेरा नाम ही सबके हमेशा काम आता है !!"

आह ! मृत्यु ? भयंकर से भयंकर दुख से छुड़ाने वाली मृत्यु ! मेरे उपर दया करो !—मुझे आलिंगन दो,'' उठ उठ !! जहर से भरे हुए प्याले उठ ! मृत्यु के विशाल घाट पर पहुँचाने वाले मल्लाह उठ !! मौत के सिपह सालार ! जिन्दगी के जानी दुश्मन ! और दुखियो के

अन्तिम अवलम्ब उठ! बस, अब तुही मेरा प्यारा है·····!

शारदा--(कुछ ठहर कर) हाँ, यह मेरे हृदय में कैसी वेदना है ? कैसा दुख है ?—अरे निर्लज्ज-हृदय ! यह क्या करता है ?--यह जीवन का लोभ ? यह कायरता ?— नहीं, नहीं; अब यह सब कुछ नहीं।

विचारा है हृदय में जो वही करना मुनासिब है !
कि ऐसी जिन्दगी का दुख भला मरने से कम कब है !!

'आह ! आकाश मे निवास करने वाले--चन्द्रदेव ! मैं तुम से विदा माँगती हूँ, अत्याचार की भट्टी मे जलने वालों पशु-पक्षियां ! मै तुम्हारी साक्षी से अपने-जीवन को समाप्त करता हूँ। संसार वासियो, मेरे अपराधो को क्षमा करो, मेरा इस नादानी की आत्म-हत्या को-- माफ़ करो, मेरे इस छोटे से बलिदान को स्वीकार करो।'

[शारदा जहर का प्याला ओंठो तक ले जाती है-- इसी समय ज्ञानचन्द्र आता है]

ज्ञान०--(ज़ोर से) ठहर ! ठहरजा !! शारदा ठहर !!! मरने से पहिले अपने बदनसीब पिता की ओर देख, हँय ! यह ज़हर का प्याला ?

[शारदा के हाथ से छीन लेता है]

शारदा--पिता ! मत रोको, इस बढ़ते हुए शोक के दरिया को मत रोको ! मत रोको इस दुखिनी के विकल-प्राणो को

मत रोको !! मत रोको इस छोटी-सी अन्तिम अभिलाषा को मत रोको !!!

ज्ञान०—(जोश के साथ) नहीं रोकूँ अपने ही हाथों से आँखें फोड़ने वाले नादान-बालक को नहीं रोकूँ ? गले में फन्दा डालने वाले किसी उन्मत्त को नहीं रोकूँ ? नहीं रोकूँ अपने हाथ से घर मे आग लगाने वाले कुलंगार को नहीं रोकूँ ? क्या यह योग्य है ?

शारदा—परन्तु—इसके बिना, मेरे दुख से छूटने का और क्या उपाय हो सकता है ?

ज्ञान०—शारदा ! क्या तू मुझे नराधम, पतित, और हृदय-हीन समझलिया है ?

शारदा—(फिर कुछ ठहर कर) नहीं, आपको एक आदर्श, दयालु और सत्पुरुष समझा है।

ज्ञान०—फिर—इस तरह का खयाल किसने पैदा किया ?

शारदा—किसने पैदा किया ?—मजबूरी ने, मौजूदा हालत ने और गर्दिश के दिनो ने।

ज्ञान०—इसका सबब ?

शारदा—"आपके ऊपर कर्जे का तक़ादा ! और·····!"

ज्ञान०—(चिन्तातुर होकर) मगर इसकी चिन्ता मुझे होनी चाहिये न कि तुम्हें ?

शारदा—नहीं, उसका कारण, उसका सबब; उसकी वजह मैं हूँ! पिताजी मैं हूँ !! मेरे ही कारण यह सब झखेड़ा है।

ज्ञान०--परन्तु--जो राग तूने छेड़ा है, वह एकदम टेढ़ा है !! शारदा इस गन्दे-ख़याल को त्यागदे ! विश्वास रख, मेरे शरीर में साँस रहते, तुझ पर कोई ज़ुल्मोज़ब्र नहीं हो सकता।

शारदा--(निरुत्तर होकर-चुप रहकर) सही है ! मगर मैं जितना ही धैर्य धारण करती हूँ, उतनी ही विकलता बढ़ती है। कोई अज्ञात-शक्ति अपने वज्र-करों से हृदय को पकड़ती है।

ज्ञान०--यह हृदय की कमज़ोरी है, बेटी शारदा ! मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि कठिन-से-कठिन दुख मे भी आत्म-हत्या जैसे जघन्म-कर्म को न करूंगी, यह आत्म-हत्या महान-से महान पाप है।

शारदा--'अवश्य है ! परन्तु अवलम्ब-हीन होने पर यह ही वह वस्तु है जो दुख से छुड़ाने में समर्थ होती है, तभी यह पाप हृदय पर दख़ल जमा लेता है।

ज्ञान०--(उदासी से) ठीक है, क्योंकि वह दशा दुख के कारण उन्मादिनी हो जाती है; आओ ! चलो !!

[दोनों का प्रस्थान]

* प टा क्षे प *

नवां दृश्य

(स्थान—फुलवारी, ज्ञानचन्द्र का अपने मित्र, प्रकाशचन्द्र के साथ बातें करते हुए प्रवेश !)

ज्ञान०—मित्र, प्रकाशचन्द्र ! मेरी बातों पर विश्वास करो, मैंने जो कुछ बयान किया है—चश्मदीद वाक़ा है ! ज़हर-भरा प्याला अपने हाथों से मैंने शारदा के हाथ से छीना है !

प्रकाश०—(स्नेह से) मेरे परम-मित्र ! मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करता हूँ-परन्तु-मेरा हृदय बार-बार यही कहता है ! कि—शारदा जैसी चतुर-और विदुषी-बालिका भी क्या आत्म-हत्या को तैयार हो सकती है ?

ज्ञान०—(दृढ़ता से) हाँ, हो सकती है। लाचारी अजब-चीज होती है ! जिसके लिए कुछ भी दुस्साध्य नहीं !

प्रकाश०—ठीक है ! हृदय तो नहीं मानता, पर तुम्हारी बातों पर भी अविश्वास नहीं कर सकता।

ज्ञान०—बस, इसी का नाम लाचारी है ! यही मनुष्य को कर्त्तव्य से विमुख और पाप की ओर अग्रसर करती है ! प्रकाशचन्द्र ! बताओ, अब मुझे क्या उपाय करना चाहिये ? जिससे शारदा के जख्मी-हृदय को आराम पहुँचे ! और मेरी बदनसीबी का अन्त हो !

प्रकाश—अवश्य, ऐसा ही होना चाहिये ! परन्तु समस्या ज़रा-कठिन है ! इसलिए विचार की जरूरत है !

ज्ञान०—कुछ भी हो ! मेरे हितैषी बन्धु ! इस संकट के समय म काम आओ ! दुखो के भयंकर तूफान से पार होने का रास्ता बताओ ?

प्रकाश०—ज्ञानचन्द्र, प्यारे ज्ञानचन्द्र ! निराश मत होओ ! नादान बालक की तरह मत रोओ !! हृदय मे साहस धरो, परमात्मा से प्रार्थना करो, वह जगत्बन्धु अवश्य संकट हरेंगे !—

पड़ी जो मन में कायरता भुलाओ और मन मोड़ो,
समय-संकट में ऐ 'भगवत्' हृदय से धैर्य मत छोड़ो!
विपत में धैर्य उर रक्खो, यही अवलम्ब निश्चल है,
कि दुखमय घोर ज्वाला को बुझाने के लिए जल है!

ज्ञान०—धैर्य धारण करूँ ? परन्तु इस विपत्ति से निस्तार होने का उपाय ?

प्रकाश०—उपाय ?—उपाय भी होगा ! पहिले चित्त स्थिर करो, साहस का आश्रय लो ! (रुककर) और विपत्ति के लिए—हाँ, शारदा की शादी के लिए वर की तलाश करा ! शारदा के दुखित-हृदय को सान्त्वना देने के लिए सब से पहला काम उसका विवाह कर देना है !

ज्ञान०—धन्य हो मित्र, तुम्हारी तीक्ष्ण-बुद्धि और विवेकमय हृदय को धन्य हो ! अहा ! क्या ही सरल और उपयोगी उपाय है ! इधर शारदा की दुखी-आत्मा को शान्ति मिलेगी। उधर नराधम रामदास को आशा का

संहार होगा ! मित्र प्रकाशचन्द्र ! सचमुच मित्र-प्रेम इसी का नाम है ! मेरी डूबती हुई किश्ती को बचा दिया !—

प्रजा परीक्षा होय मचै संग्राम भयंकर !
रोग भयें घरनारि काम पड़िये तें किंकर !!
मित्र परीक्षा होय समय आयें प्रलयंकर ।
पुत्र परीक्षा होय वृद्ध-पितु रहै प्रीयंकर ॥
ऋषी परीक्षा का समय, निश्चय संकट धाम है ,
धर्म परीक्षा का समय, मृत्यु-काल मुख नाम है ;

प्रकाश०—(प्रेम से) मित्र ज्ञानचन्द्र ! तुम्हे सब चिन्ताऐं त्यागकर शारदा के पाणिग्रहण की जल्दी-से-जल्दी चेष्ठा करनी चाहिये ।

ज्ञान —नहीं है ! परन्तु—आजकल समाज की दशा इस लायक नहीं रह गई कि—कोई भी ग़रीब अपनी कन्या का—विवाह शीघ्रता-पूर्वक कर सके !—

'बिछुड़ी-सी हसरतें हैं उजड़ा सा बाग है ,
उस पर भी देखियेगा सब को दिमाग़ है ;

बड़े घरों की ओर देखिये तो 'पढ़ी-लिखी'; और खूबसूरती की चाह है ! ग़रीबों पर नज़र डालिए तो दहेज की भरपूर माँग है ! साधारण श्रेणी में जाइये

तो—लड़की में 'ऐब' निकालने की चेष्ठा का नीचता पूर्ण कृत्य है !

प्रकाश०—यह सब है, मगर शारदा की शादी करना तो—ज़रूरी है !

ज्ञान०—यही तो मजबूरी है ! आप ही कहिये, किसके साथ विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया जाए ! घर में चाहे कुछ न हो परन्तु—लड़का योग्य, सदाचारी और समझदार हो ! मुझे यह हट नहीं कि मालदार हो !

प्रकाश०—हाँ, तो मेरी समझ मे शारदा के योग्य जीवनचन्द्रजी के सुपुत्र प्रभाचन्द्रजी हो सकते हैं ! पर इसमें तुम्हारी क्या राय है ?

ज्ञान०—(सहर्ष) मुझे स्वीकार है ! प्रभाचन्दजी को मैं जानता हूँ—उनकी योग्यता और सदाचारता को पहिचानता हूँ !

प्रकाश०—तो शीघ्र ही शादी की तैयारियाँ शुरू करदो !

ज्ञान०—बहुत अच्छा ! यही करूँगा !!

(दोनो का भिन्न-भिन्न दिशाओं को प्रस्थान)

* प टा क्षे प *

दशवां दृश्य

(स्थान—विवाह-मण्डप, सजावट होरही है ! ज्ञानचन्द, प्रकाशचन्द, जीवनचन्द्र तथा अन्य कार्यकर्त्ता गण विद्यमान हैं ! बीच मे विवाह-वेदी बनी हुई है । प्रभाचन्द और शारदा वर-वधू के रूप में पास बैठे हैं, पण्डितगण मंत्र बोल रहे हैं ! वेदी मे आग धधक रही है !)

(सखी मण्डल का—दोनो ओर से गाते हुए प्रवेश; अन्तरा, नैपथ्य-गान द्वारा प्रचारित करना चाहिये । आवश्यक होने पर तेज आवाज के लिए नैपथ्य-गान—की मदद लेनी चाहिये !)

गायन

तुम हो अजर-अमर अविनाशी, करुणामय भगवान !
अभिमा···नी, भी ता···रे !!
प्रभु तुम निकाम हो, आनन्द-धाम हो ।
हे नाथ ! मेरा चरणों में निश-दिन प्रणाम हो ॥
निर्बल के तुम सबल सहारे,
विश्व-बन्धु ! बन्धन से न्यारे;

हे गुणवान ! हे अघ-हान !! तुम हो अकथनीय छविमान।
अभिमा·· नो, भी ता···रे ॥ तुम० ॥
तुम अतुल ज्ञान हो, महिमा महान हो।
अज्ञान-ध्वान्त ध्वंस को, रवि के समान हो ॥
'भगवत्' चरण शरण में आया,
हरण करो भव-बन्धन माया;
रे अविकार ! जगदाधार !! भू-मंडल के जीवन-प्रान।
अभिमा···नी, भी ता···रे ॥ तुम० ॥

(प्रस्थान)

पण्डित—(दो मिनिट मंत्र बोलकर फिर बन्द होने पर) लीजिये, यजमान ! वैवाहिक क्रियाएं समाप्त हो चुकी केवल कन्यादान कराना शेष है ! ज्ञानचन्द्रजी आइये ! और इस युगल-जोड़ी का पाणिग्रहण कर आशीर्वाद दीजिये कि प्रेम पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए सुख-समृद्धि प्राप्त करे। चिरजीवी हो !

ज्ञान०—आया महाराज ! (स्वतः) अहा ! क्या ही सुन्दर दिवस है ! आज कैसी मनोहारी प्रकृति-लीला है ?? परमात्मा तू धन्य ही ! तेरी महिमा अपरम्पार है ! आज मैं कन्या के ऋण से उऋण हो रहा हूँ ! यह तेरा ही प्रसाद है ! तेरी ही माया है !!

(ज्ञानचन्द विवाह मण्डफ में कन्यादान करने के लिए बैठता है ! उसी समय दो-तीन सिपाहीयों के साथ सेठ रामदास आ जाते हैं ! सब कोई भय-भीत हो, खड़े हो जाते हैं । और एक दूसरे की ओर देखते हैं !)

सिपाही—(ज्ञानचन्द के हाथो मे हथकड़ी पहिनाते हुए) ज्ञानचन्द्र ! मै तुम्हे सेठ रामदास की डिग्री में गिरफ्तार करता हूँ !

ज्ञान०—(आँखो मे आँसू भरकर) आह ! तक़दीर !!...... अन्धकार ! गहरा अन्धकार !! मेरी आँखो के आगे अन्धकार छा रहा है ! जमान धमकी जा रही है ! मैं पागल हो रहा हूँ सेठजी !......सेठजी !! दया करो ! कुछ दिन के लिए—नहीं, नहीं, कुछ देर के लिए ही. मुहलत दीजिये !..... सेठजी ! आह......यह वेदना ? यह दुख ?? .... आह ! .... उफ़......!"

(बेहोश होकर गिर जाता है !)

प्रकाश—(आगे बढ़कर) आह ! संसार-तुझ मे यह नीच व्यवहार ! आसामी के साथ मे साहूकार का यह अत्याचार ? धिक्कार !—धिक्कार !!

(शारदा आदि सभी रोते हैं ! भयकर हाहाकार मचता है ! सिपाही लोग ज्ञानचन्द के उठाने को झुकते हैं-रामदास शरारत-भरी दृष्टि से देखते है । धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।)

ड्रॉप

द्वितीय-अंक !

पहला दृश्य

(स्थान—जेलखाना, जंगले के भीतर ज्ञानचन्द्र बैठ गा रहे हैं !—हजामत बढ़ रहा है ! जेल का ड्रस पहिने हैं ! हाथों में 'हथ-कड़ी' पड़ी हुई हैं ! चेहरे पर उदासी के भाव हैं !)

गायन

मोह, माया, अहंकार के भाव तज ।
राम-भज, राम-भज, राम-भज, राम-भज ॥
जिन्दगी का भरोसा नहीं, एक-पल ।
जाने, कब किस-घड़ी दम ये जाए निकल ?
इसलिए मानकर एक—मेरी अरज़ ।—
राम-भज, राम-भज, राम-भज, राम-भज ॥
सारी दुनियां का तारा, निराला है वह ।
गायेगा, उसके गुण-गान को किस तरह ?

बस, हृदय में विमल-प्रेम का साज़-सज ।
राम-भज, राम-भज, राम-भज, राम-भज ॥
हो रहा अपनी हालत से क्यों बे खबर ?
झूँठे-झगड़ों से 'भगवत्' हटाले नज़र ॥
लौ-लगा उनसे जिनने बचाया था गज ।
राम-भज, राम-भज, राम-भज, राम-भज ॥

ज्ञान०—(स्वगत) आह ! संसार की लीला विचित्र है ! किसी को अपने भविष्य का पता नहीं !—कि आज क्या है ? कल क्या होगा ? एक पल में भीषण-परिवर्तन होजाता है । रंक से राजा और राजा से रंक वही दिखाने लगता है ! जिसका भाग्य फूटता और जगता है । (रुककर) परमेश्वर ! दयासिन्धु ! कृपानिधान ! मुझ भाग्य-हीन, बदनसीब सेवक पर दया करो ! (दीर्घ निश्वास के साथ) ओह ! मुझ अभागे की पुत्री का पाणिग्रहण भी न हो सका, हाथ में आया हुआ अमृत-फल दुर्दैव ने छीनकर दूर फेंक दिया ! उफ् !·····उफ् !!

समझ पाती नहीं हैं भाग्य को इन्सान की आंखें,
दिखाई सब मुझे देता जो होतीं ज्ञान की आंखें ।

अगर सुख भाग्य में होता—न कारागार में होता—
स्वयं रस्ता बता देतीं मुझे भगवान की आँखें ॥

ओह ! चारों ओर निराशा-ही-निराशा है ! बेचारी शारदा क्या करती होगी ? किसके आधार रहेगी ? कौन उसे देखेगा ? और प्रभाचन्द्र क्या खयाल करेंगे ? ओफ्·····कितनी मार्मिक वेदना है ! कितनी भयंकर दशा है। स्वच्छन्द रहने वाला शेर—कठहरे मे जिस तरह घबड़ाता है, चक्कर काटता है ! और अन्त में निश्चेष्ट बन जाता है—वही दशा है ! अपनी कल्पनाओं के साथ आकाश में विचरण करने वाला—पक्षी जिस तरह पिंजड़े में विकल होता है—वही दशा है ! परन्तु उन्हे अपनी जान की चिन्ता होती है ! और मुझे—अपनी प्यारी सन्तान की ! बेटियो की !! वे बेचारी अनाथ कन्याऐ ? हा ! मेरे हृदय के सौ टुकड़े क्यो नहीं हो जाते ? (रोते हुए) आह ! दयालु ! सर्व शक्तिशाली ! करुणेश ! जीवन-मुक्त करने वाले—परमात्मा मेरी सन्तान की रक्षा करो ! मुझे ?—और मुझे एकबार इन अधम-दृगों को सफल बनाने का अवसर दो ! मेरा हृदय टूटा जा रहा है ! मैं निरालम्ब होकर तुम्हारी शरण चाहता हूँ !

'मुझे चिन्ता की ज्वाला में न अब भगवान जलवाओ,
हृदय की भक्ति के बलपर मुझे चैतन्यता लाओ !'

आह ! मेरी अनाथ कन्याऐं ! किसका आश्रय ग्रहण

करेंगी ? और वह विवाह का आयोजन, किस प्रकार पूर्ण हुआ होगा ? क्या मित्र प्रकाशचन्द ने पाणिग्रहण कृत्य न कर दिया होगा ? ओह !·····सहा नहीं जाता, विचार नहीं कर सकता ! जी-विचलित और भूले हुए पथिक की तरह विक्षुब्ध हो रहा है ! सारा संसार अन्धकार पूर्ण·····एकदम, अन्धकार पूर्ण हो रहा है ! भगवान् ! अब मेरा कोई मददगार नहीं ! आह ! हृदय-ताप जला र··· हा·····है !····· हे, त्रैलोक्य नाथ ! बस, अब····· मे·····रा·····उद्धार ····· क ·····रो·····!" (गिर पड़ता है)

(सहसा पर्दा फटता है, सुरेन्द्र (इन्द्र-देवता) प्रघट होते हैं ! मुकुट, हार, कुण्डल, पीताम्बर से शोभित हैं। हाथ मे गदा है!-मुँह पर मुस्कान, ज्ञानचन्द उठ बैठता है ! हाथ जोड़ घुटने टेककर)

इन्द्र—(एक हाथ उठाकर) ज्ञानचन्द्र ! ज्ञानवान् होकर अज्ञान न बनो, विपत्ति मनुष्य के लिए—परीक्षा का समय है ! उससे विचलित होना-कायरता है ! धर्म पर अटल रहो, विपत्ति से मत डरो ! अपने धर्म पर विपत्तियों को स्थान न दो !

मरमिटो धर्म पर मुँह से न कभी आह करो,
जान जाये तो चली जाऐ न पर्वाह करो ।

ज्ञान०—परन्तु—महाराज ! मेरे उद्धार का·· ·····!

इन्द्र—हाँ, तुम्हारा उद्धार होगा, भविष्य के लिए चिन्ता न करो, धर्म-पक्ष की हमेशा जय होती है! अत्याचारी अपनी करनी का फल पाते हैं!

(धुँआ-सा उठता है, इन्द्र अदृश्य होते हैं!)

ज्ञान०—(सिर उठाकर) हँय! गये, गये, क्या मैंने अभी स्वप्न देखा था?—नहीं, नहीं! पर यहाँ तो कुछ नहीं दीखता! धन्य हो, भगवान् तुम्हारी अपार शक्ति है! (चिन्ता मे लीन हो जाता है! कुछ रुककर) अरे! यह सब व्यर्थ है! चिन्ता करने से कुछ लाभ न होगा?—केवल.....!

(दो सिपाहियों का प्रवेश)

सिपाही—(धक्का देकर) चल इधर! कम्बख्त, न कुछ काम करता है। वरन् जेल को घर समझता है।

ज्ञान०—जमादार साहिब, गरीब पर रहम करो, तरस खाओ! आखिर आप भी इन्सान हो, इस टूटे हुए दिल और फूटी हुई तक़दीर वाले बदनसीब कैदी को रहने दो!

दू० सि०—(ठोकर मारकर) यह कम्बख्त, सूअर के बच्चे इस तरह थोड़ा मानते है। यह तो..... !

(मारता है)

ज्ञान०—आह! आह!! भगवान्.....!!!

अगर किस्मत में सुख होता, न मैं यों ठोकरें खाता—
नहीं ये देखनी पड़तीं कभी अपमान की आँखें!

रहम ! रहम !! करो, परमात्मा के लिए रहम करो !

सि०—(क्रोध से) चल, चल; हरामजादा, नालायक, बदमाश ! मुझे पढ़ाने चला है ! सुअर !

(जूते की ठोकर मारकर)

ज्ञान०—(पीड़ा से) हाय ! मार डाला ओह, !·····सरकार !

नहीं मुझको नज़र आता असर दिल की मुहब्बत का।
कि होता वक्त ही ऐसा है गर्दिश का, मुसीबत का ॥

सि०—बेबकूफ को अपनी ही सनक सवार है ! बदमाश कहीं का !

ज्ञान०—(दर्शकों की ओर) संसार ! ओ ! परिवर्तन-शील, स्वार्थी-संसार ! तेरी दशा बड़ी विचित्र है ! उसी काम को एक धनवान करता है—वह ऐय्याश कहलाता है, और गरीब करता है, तो बदमाश के नाम से पुकारा जाता है। (रुककर) तक़दीर ! उफ् ! फूटी हुई तक़दीर !!

न जिसको दाँत ही तोड़ें मिली मिट्टी हुई रोटी,
उसीके भाग्य में होगी, कि किस्मत जिसकी हो खोटी !

(रोते हुए—पैर पकड़कर)

सिपाही जी, तरस खाओ ! दो-दिन का भूखा हूँ ! पेट नही भरता ! और काम के लिए····· !

सि० दू०—(बैत मारकर) बेहूदा, बत्तमीज ! समझता नहीं कि

हम वह सिपाही हैं जो आँखों से खून बरसाते—और मौत की सूरत बनकर गोली चलाते हैं !

ज्ञान०—मार से देह टूट रही है। और भूख से दम निकल रही है ! जमादार साहिब !

सि०—बेबकूफ़ बकता ही चला जाता है ! चल इधर !—

(दोनों सिपाही मारते हैं ! ज्ञानचन्द खूनसे रँग जाता है)

ज्ञान०—(घुटनों के बल) 'हे ! करतार-ग़रीब क़ैदियों पर यह अत्याचार !"

(टेल्ला)

* पट-परिवर्तन *

दूसरा दृश्य

(स्थान—ज्ञानचन्द का मकान, शारदा और विनोदिनी, दोनों मलिन-वेश, शोकाकुल-चित्त से बैठी, भगवत्-गुण गायन कर रही हैं !)

गायन

तुम हो संकट-हारी, तुमको मेरी नमामि !
हिंसादिक पापों ने घेरा,

मन में किया विराट अँधेरा,
नहीं, सहायक कोई मेरा;
तुम हो पर-उपकारी, तुमको मेरी नमामि !
भव-भय-भञ्जक नाम तुम्हारा,
सुख देना है काम तुम्हारा,
मोक्ष-महल है धाम तुम्हारा;
तुम हो जग हितकारी, तुमको मेरी नमामि !
खल-कीचक को तार दिया ज्यों,
पशु अधमों को प्यार किया त्यों;
'भगवत्' मुझे बिसार दिया क्यों ?
तुम हो समता धारी, तुमको मेरी नमामि !

बिनो०—बहिन, शारदा ! अब उदास रहने और चिन्ता करने से कोई लाभ न होगा ! धैर्य रक्खो, साँप के निकल जाने पर—लकीर का पीटना बेकार है ! चिड़ियों के चुँगजाने पर पछतावा करना झूँठा विचार है ! और दुख के बढ़ाने का ही उपचार है !

शारदा—सत्य है, परन्तु—मेरा हृदय नहीं मानता, मैं जानती हूँ पर—वह नहीं जानता !

'जलै पानी भी जब उसमें बुझाने के लिए क्या हो ?
दवा से मर्ज़ बढ़ता हो तो फिर उसकी दवा क्या हो ?

विनो०—नहीं बहिन, यह तुम्हारा झूँठा ख्याल है, साहस करो और पिताजी के उद्धार का इन्तजाम करो !

शारदा—बहिन बिनोदिनी, पिताजी के उद्धार का क्या उपाय हो सकता है ?—हम अबलाऐं क्या एक-धन-जन सम्पन्न-व्यक्ति के मुकाबिले मे ठहर सकती हैं ?

बिनो०—(दृढ़ता से) हाँ, ठहर सकती है ! आग पर पका हुआ मिट्टी का घड़ा क्या वेग और शक्ति-सम्पन्न जल को नहीं रोक लेता ? आँधी मे उड़ने वाली एक नाचीज़ धूल क्या बलिष्ट और हिम्मतवर पुरुष को नही रुला देती ? विशाल-कायी गजराज को क्या शक्ति-हीन 'चिउँटी' नही मार डालती ?

शारदा—अवश्य, मगर शारीरिक-शक्ति से मुकाबिला करना सुगम है, परन्तु—धन-शक्ति से जूझना मूर्खता है, और टेढ़ी खीर है ! उससे लड़ सकने वाली तो सिर्फ अभागी तक़दीर है !!

विनो०—तो क्या जिस्मानी ताक़त से भी बढ़कर धन की ताक़त है ?

शारदा—हाँ, अवश्य है !—

ज़माना आज कहता है बड़ी ईमान से दौलत !
इसीसे मानते हैं लोग बढ़कर जान से दौलत !!

बिना ही मौत के आये, मज़ा स्वर्गों का यह देती—
मिलाती नीचसे भी नीचको भगवान से दौलत !!

बिनो०—परन्तु—अपने प्यारे बच्चे को सिंह के पंजे में दबा देखकर क्या गोली-गाय उसका मुकाबिला नहीं करती ? आकाश तक पहुँचने वाली आग की भयंकर लपटें देखकर क्या शक्ति-हीन मनुष्य बुझाने का प्रयत्न नहीं करता ?—अवश्य करता है ! बहिन शारदा ! शोक को दूर करो, चिन्ताओं को हटा दो ! और धैर्य को हृदय में स्थान दो ! क्यों ? कि—

धैर्य धरें धन होय धैर्य से धान धरापर !
धैर्य वनिज आधार धैर्य से बढ़ै सुधाकर !!
धैर्य धरें दुख मिटै धैर्य से विद्या-सागर !
धैर्य धरें शिशु बढ़ै, विजय-रण, बढ़ै प्रभाकर !!
धैर्य धरें ऋषि मुनि लहें स्वर्ग-मुक्ति शुभ थान को !
इसलिए धैर्य ही योग्य है धरना हर इन्सान को !!

शारदा—(सिर झुकाकर और कुछ सोचकर) बहिन, पिताजी के—उद्धार के लिए तुम्हीं बताओ, किसका सहारा लिया जाऐ, क्या उपाय किया जाऐ ?

बिनो०—क्या तुम्हारा संकेत प्रभाचन्दजी की तरफ़ है ? नहीं बहिन, उनसे ऐसे समय मे सहायता माँगना, स्वयम्

अपना अपमान करना है ! स्वाभिमान के विरुद्ध है ! न जाने वह अपने दिल में क्या ख़याल करेंगे ?

शारदा--तो किसकी मदद की दरकार है ?

बिनो०--केवल परमात्मा की, वही हमारा मददगार है ! वही जगदाधार है ! और वही दयागार है ! उसकी महिमा अपरम्पार है (रुककर) बहिन, उस बूढ़े रामदास से ही दया की प्रार्थना करना जरूरी है ! यह सही है कि बेज़ा है, लेकिन मजबूरी है ! वह चाहे तो उद्धार हो सकता है.....।

शारदा--(आश्चर्य से) बहिन, यह क्या कहती हो? क्या फणधर से अमृत की आशा हो सकती है ? क्या अग्नि से शीतलता मिल सकती है ? क्या तलवार की धार का विश्वास किया जा सकता है ?—नहीं, नहीं, तुम भूलती हो ? उस नर-पिशाच से दया की आशा करना, आकाश से फूलों की चाह करना है ! उसके द्वार पर जाना, मानों फाँसी के तख्ते पर जाना है !! उससे बात करना मानों मौत से मुलाकात करना है !!!

बिनो :—यह सही है ! परन्तु—पिताजी की भलाई के लिए सब-कुछ करना होगा--

है प्रेम पिताजी का भला कब के वास्ते,
गदहे को बाप कहते हैं मतलब के वास्ते !

शारदा--(सोचकर) ओह ! मजबूरी अजब चीज़ है ! बहिन

बिनोदिनी, क्या उस नराधम से उद्धार की आशा करना ठीक है ?

बिनो०—(दृढ़ता से) हाँ, ठीक है ! आखिर वह भी इन्सान है, उसके भी जान है ! वह भी अपने पुत्र-पुत्रियों पर दया करना जानता है !

शारदा—परन्तु इतने पर भी मेरी राय मे बेकार है !

बिनो०—मगर अपना कर्तव्य है !—

कार्य कुछ होवै, न हो कर्तव्य करना चाहिये !
कर्तव्य से होकर विमुख जगमें जिये तो क्या जिये ?

शारदा—खैर, मुझे स्वीकार है !

बिनो०—तो चलो बहिन, परमात्मा मददगार है !

शारदा—चलो,

(प्रस्थान)

* पट-परिवर्तन *

तीसरा दृश्य

(स्थान—जंगल, पहाड़ी स्थान है, पत्थर पड़े हुए हैं भयानकता विद्यमान है ! बहुत-से डाकू उपस्थित हैं ! पहिनावे में नेकर-कमीज और मुँह पर काली नक़ाब है—सलाह कर रहे हैं ।)

दस्यु नं० १—मेरी राय में सलाह बिल्कुल ठीक है, और मुझे स्वीकार है !

नं० २—परन्तु इस विचार की बहुत बड़ी दरकार है, कि आज-कल कौन सब से ज्यादह मालदार है !!

नं० ३—मालदार ? रूपचन्द्र सेठ क्या कम ज़रदार है ? रायबहादुर है, नम्बरदार है ! तुम्हारा क्या ख़याल है ?

नं० ४—अरे वह तो एकदम कंगाल है ! शरीफ़ो के जुए-यानी सट्टे में सब-कुछ लुटा बैठा, अब तो ढोल के भीतर पोल वाली मिशाल है !

नं० ५—(उपेक्षा से) छोड़ो, दोस्तो झगड़ों को ! मेरी राय में सेठ लोभीराम हम लोगो की बड़ी अच्छी शिकार है ! खद्दर पहिनता है ज़रूर—परन्तु काफ़ी मालदार है ! 'राजाबहादुर' के नाम से पुकारती सरकार है !

नं० ४—लेकिन हमें इसमे भी इसरार है ! वह जमाना गया जब मालदार था, अब तो राजाबहादुरी की ओट में····· बेड़ा पार है !

नं० १—आख़िर किसके यहाँ जाना, हमारे लिए 'पौबारह' का द्वार है ?

नं० २—अहा ! ख़ूब याद आया ! (हर्षोन्मत्त होकर) वक्त की सूझी ! दोस्तो ! सेठ रामदास के यहाँ काफ़ी ज़र है ! और·····!

नं० ३—मगर पुलिस की चौकी ज़रा पास है, इसलिए डर है !

नं० १—(लापर्वाही से) उसकी क्या फ़िकर है ! पुलिस की चौकी तो हमारा-घर है ! पुलिस हम लोगो के लिए थोड़े-ही है, वह तो शरीफ़ और इज्ज़त-दारों को डराने के लिए है ! इतने पर भी जहाँ चाँदी की चोट दी कि मामला बिलकुल बे ख़तर है !

नं० २—बेशक ! आपका कहना बेहतर है ! पुलिस तो हमेशा हमारी मददगार है । हमारे कामों में दख़ल देने का उसे क्या अख़्तियार है ?—

मारकूट कर लूटपाट कर दूर निकल जब जाते हम,
पुलिस पहिनकर वरदी अपनी लेती है तब दममें दम;
पीछे से घटना थलपर जा झूँठी धूम मचाती वह—
उल्टी शान जँमातो सबपर डरती है हमसे हरदम !

नं० १—तो अब क्या विचार है ?

सब—हमको कब इन्कार है ! हमारा गिरोह तो हरदम तैयार है !

नं० १--मगर·····दिन-दोपहर डाका डालना, खतरे में जान है !

नं० ३--रामदास के मकान की ओर तो बिल्कुल सूनसान है, न कोई आदमी रहता है, न जानवर ! सिर्फ नीचे जमीन और ऊपर आसमान है !

नं० २--और हो भी तो क्या ? हम कौन नादान हैं !

न डरते हम कभी आये अगर हैवान की सूरत,
हमें कैसे डरायेगी भला इन्सान की सूरत ?
कदाचित मौत आती है तो लड़ते हैं दिलेरी से—
पकड़ लेते हैं धन-दौलत को बन शैतान की सूरत !

(सब का मिलकर गाना)

(हाथों मे चमकती हुई तलवारें-पिस्तौले होनी चाहिये)

गायन

मत दहसत खाओ, बढ़कर आओ, चलो सभी मिलकर !
तलवार चलाओ, हाथ दिखाओ, दूर करो सब डर !!
कैसी ये जान है, ईश्वर की शान है—
मत क़दम हटाना, लेकर आना, छीन खज़ाना-ज़र !

दौलत से मान है, सेवक जहान है—
हाँ, नाम कमाओ, मौज़ उड़ाओ, जीवन करो बसर !!

(तेज़ी के साथ प्रस्थान)

* पट-परिवर्तन *

चौथा दृश्य

(स्थान—शोभा-सम्पन्न सेठ रामदास का मकान, डाकू लोग सेठजी, को छाती पर सवार है। हाथ मे पिस्तौल है। सेठजी भय से काँप रहे हैं। चारो ओर बन्दूक-पिस्तौल-तलवारों का साम्राज्य है।)

डाकू—(कड़क कर) नादान ! अपनी जान से हाथ मत धो, निकाल ताली, बतला कहाँ है मालोज़र ?

सेठजी—(गिड़गिड़ाते हुए) मुझ ग़रीब पर····· ! रहम करो, ग़रब परवर !

डाकू—(पिस्तौल का निशाना साधकर) बतला, बतला, दुष्ट ! नहीं तो अभी जान को जहान से जुदा करता हूँ ! क्यो नाहक मरता है ? ला, ला, दे निकाल दे, ताली !

सेठजी—(काँपते हुए) हु······जू······र······आ······ली ! आह ! आह !······ज़रा······उ··ठि··ठि··ये तो ?···देता हूँ !

(डाकू छाती से उठ बैठता है, सेठजी घबड़ाते हुए उठते हैं-और ताली देते हैं !)

डाकू--(ताली लेकर) बता, कम्बख्त ! किधर है तिजोरी ! (ज़ोर से धक्का देकर गिरा देता है ! छातीपर चढ़कर) बतला, बतला, नहीं तो अभी कुत्ते की मौत मारा जायगा, (पिस्तौल तानता है, उसी वक्त शारदा और बिनोदिनी आती हैं । बिना देखेही)

शारदा--बहिन जब परमात्मा हमारे सरपर है ! तब हमें भला किसका डर है ?

विनो०--अनाथ और दुखितो का रक्षक तो एक मात्र ईश्वर है ! (चौंककर) हॅय, यह क्या ? सेठजी के घर तो डाकुओं का .... बहिन चलो,

(दोनों लौट जाती हैं)

(नैपथ्य मे)--(घन्टी की आवाज़) "हल्लो,......हल्लो !
जी, '......'
'थ्री-टू-एट-वन पुलिस दफ्तर !, '........'
जी हाँ ! (चुप रहकर)
जी, सेठ रामदास के घर मे डाका पड़ रहा है !
जी हाँ, डाकू लोग अब तक मौजूद है, वह उन्हें
मारे डालते हैं !......जल्दी आइयेगा !"

डाकू--बतला, बतला, जल्दो बोल, कहाँ है तिजोरी ? (सेठजी घबराकर हाथ का इसारा कर देते है ! डाकू लोग उधर ही चले जाते हैं ! भूल से—एक पिस्तौल

जेब से--गिर जाता है !--इधर से शारदा और विनोदिनी आती हैं।)

शारदा--(व्यग्रभाव से) हे करुणागार! धनिकों के ऊपर लुटेरों का यह अत्याचार ?

(सेठजी चमककर उठ बैठते हैं, और शारदा की ओर गौर से देखते हुए--)

सेठजी--कौन ? शारदा !--अहा ! नर्क में स्वर्ग, ज़हर में अमृत, मिट्टी में सोना ! खाक में जवाहिर ! कूड़ों मे लाल ! (स्वगत) आज तो स्वयम् फन्दे मे आगई. मेरी गमगीन तबियत को हरा कर दिया। सचमुच यह प्रभु की कृपा का फल है ! ऊँह.....शादी होगई तो क्या ? गरीबों का क्या रस्मोरिवाज ? (प्रकट) शारदा! यहाँ कैसे ?

शारदा--(सिर झुकाकर) आपके चरणों की शरण, केवल आपका आधोर !

(इसी समय पुलिस के दारोग़ा और सिपाहियों का प्रवेश)

दारोगा--(ज़ोर से) बस, खबरदार ! किधर गये,.....किधर गये !..... कहाँ गये,.....कहाँ गये ? बताओ, बताओ !!!

सेठजी--अहा ! आप आगये, दारोग़ा साहिब, इन दोनों औरतो ने मुझे.....(कुटिल कटाक्ष के साथ) बड़ा परेशान कर रक्खा है ! मेरी इस सफेद बालों की समझदार बुद्धि को नादान कर रक्खा है।

दारोग़ा—(आश्चर्य के साथ) हँय ! यह कमसिन औरतें भी डाका डालती हैं ?

(देखता रह जाता है)

सेठ—(दृढ़ता से) हाँ ! यह उन खूँखार डाकुओं से बढ़कर हैं ! जो जान मालपर ज़बरन कब्ज़ा करते हैं ! और एक साथ ही मार डालते हैं। परन्तु·····यह दोनो बुरी तरह धीरे-धीरे क़त्ल करती हैं !

दारोग़ा—लेकिन इन लोगो के पास हथियार तो नहीं दिखलाते ? कहाँ हैं·····?

सेठ—(उपेक्षा से) अहह ! इनके ज़हरीले और नुकीले हथियार इनके पास होगे ! तलाशी लीजिये ! (ज़मीन पर पड़ी हुई पिस्तौल उठाकर) यह देखिये, पिस्तौल इसका सुबूत पेश कर रही है ! दारोग़ा साहिब !

(दारोग़ा पिस्तौल हाथ मे लेकर दोनों को गिरफ्तार करता है)

दारोग़ा—(शान के साथ) देखते क्या हो ? पकड़लो सिपाहिओ ले चलो !

(शारदा और बिनोदिनी के हाथो में हथकड़ियाँ पड़ती हैं ! सेठजी दूसरी ओर मुँह फेर कर हँसते हैं, सिपाही दोनो को ले जाते हैं)

सेठजी—(स्वतः) अहा ! मैं भी कैसा भाग्यवान हूँ ! सचमुच परमात्मा मेरे ऊपर दयालु है ! धन्य है आज का दिन शारदा मेरे चंगुल मे आगई ! अब क्या है ? जहाँ नोटों

का गठ्ठर रिश्वत में दिया कि शारदा मेरे घर (रुककर) शारदा समझदार है, ऐसी हालत में जब पिता घर नहीं, चारों ओर आफ़त हो आफ़त है ! तब जरूर मेरी बात मानलेगी !···मेरे साथ रहना—न सही शादी ! और शादी भी करलूँ तो कौन आँख मिला सकता है !— यह खूब रहा, अब मंजूर करलेगी इसमे कोई विघ्न-बाधा नहीं पड़ सकता, (रुककर) क्या डाकू लोग सब-कुछ लेगये, देखना चाहिये घर का क्या हाल है ? इन लुटेरो के मारे दिन-दहाड़े जीना दुश्वार होरहा है !

(जाता है)

* पट-परिवर्तन *

पाचवां दृश्य

(स्थान—मिष्टर नरेन्द्र का कमरा, मि० नरेन्द्र शान्ता की छाती पर सवार हैं, वह बिलख-बिलख कर रो रही है !)

नरेन्द्र—(कड़क कर) बस, कह चुका; दे ! दे !! निकालकर जो कुछ हो, दे ! नहीं तो अभी जान निकाल दूँगा ! बदमाश, पागल कहीं की !

शान्ता—(तड़फकर) आह ! आह !! मेरे जीवन-धन ! कहाँ मेरा इतना सौभाग्य, जो आपके हाथों परलोक पाऊँ

और इस नश्वर शरीर-मे·····उफ्! उफ्!!·····
ओह!·····हे·····भगवान·····न·····न!

नरेन्द्र--बोल! बोल!! देती है या नहीं? बतला, बतला, कम्बख्त--बतला, इस धधकते हुए कलेजे की आग बुझाने के लिए·····प्यारी शराब के लिए! दे, दे, जल्दी·····!

शान्ता--(पीड़ा से) आह! मेरे पास कुछ नही है! मैं सौ-बार कहती हूँ, आपके चरणो की शपथ खाकर कहती हूँ, कि कुछ नहीं है! स्वामी दया करो, क्षमा-करो; दासी पर रहम करो!

नरेन्द्र--नही देगी, नही देगी; क्या कहती है? नही देगी? बोल!

शान्ता--(कम्पित-स्वर से) प्राणाधार! क्या पिताजी का धमका कर जो दो-सौ रुपये ले गये थे, वह खत्म हो गये?

नरेन्द्र--(छाती से उतरकर) होगये, कल ही होगये, डेढ़ सौ रुपये तो जुए मे हार गया और?--और पचास रुपये की·····श·····शराब पी गया!

शान्ता--(प्रेम से) मेरे परमेश्वर! मुझ दासी की प्रार्थना स्वीकार करो, इज्जत और शराफ़त, धर्म और कर्तव्य को भुलाने वाली इस पापिनी शराब का परिहार करो, (हाथ जोड़कर) और खुदगर्ज-मित्रों की जमात को ठुकरादो! एक बार!·····सिर्फ एकबार·····!,

नरेन्द्र—(बात काटकर) चुप बदमाश, जब तक मैं सुनता जाता हूँ—बकती ही चली जाती है ! बस, जुबान बन्द कर ! नहीं तो जीभ खींच लूँगा, और इस बदमाशी की भरपूर सजा दूँगा !

समझना न यों मैं पिघल जाऊँगा—
ये सीना नहीं बल्कि पत्थर का दिल है!

शान्ता—(घुटने टेककर) स्वामी, 'प्राण-पति ! मुझ दुखिया-दासी की प्रार्थना मंजूर करो ! और इस लगे हुए दुर्व्यसन को दूर करो।—

नहीं हर्गिज़ सुहाती है सफेदी में लगी स्याही,
तजो सब दुर्व्यसन मनसे मिलेगी विभव मनचाही!
बुरे कर्मों का फलही तो रुलाता है जबां बनकर,
वही सत्कर्म सब रोगों को हरता है दवा बनकर !!

नरेन्द्र—बस, बस, चुप रहो,—

सुहाती अब नहीं मुझको धरम औ ज्ञान की बातें-
मेरी बोतल ही मुझको है हमेशा जान से बढ़कर !

शान्ता—प्राणनाथ ! नहीं, नहीं, यह तुम्हारी भूल है ! समझ का अन्तर है !! और बुरी-संगति का असर है !!!

वही इन्सान इन्सां है जो खुद को खुद समझता है—
नहीं दुनियाँ में कोई भी धरम और ज्ञान से बढ़कर!

नरेन्द्र—बस, बस, चुप हो ! बहुत सुन चुका, मेरे ऊपर अपना चक्र चलाती है ! और जली हुई तबियत को और भी जलाती है ! ला, ला, निकाल ! जल्दी निकाल !! एक रुपया ही दे !

शान्ता—(हाथ जोड़कर) स्वामी ! दासी को और न शरमाओ ! मेरे पास एक पैसा भी नहीं ! जेवर तक अब पिताजी अपने हाथ में रखते हैं ! तुम्ही कहो ? मैं कहाँ से दूँ ?

नरेन्द्र—हँय ! बार-बार 'नहीं' का जवाब ? हट ! हट !! कम्बख्त, दूर हो मेरी आँखों के सामने से !

(नरेन्द्र जोर से धक्का देता हुआ, चला जाता है ! शान्ता जमीन पर पड़ी रहती है, फिर धीरे-धीरे उठकर आँसू पोछते हुए—)

शान्ता—आह ! दयालु कहाने वाले ईश्वर ! मुझे संसार से उठाले, उठाले—मैं जीना नहीं चाहती ! मेरा जीवन मौत से बढ़कर दुखदायी है ! अय मेरे कसाई पिता ! देख, देख, मेरी इस कष्ट-पूर्ण दशा को देख ! पति की योग्यता, सदाचारता को न देखकर धन-दौलत को देखने वाले मान-प्रतिष्ठा के लोभी-पिता देख ! आह ! समाज के कर्णधारो ! बड़े-घरके गुण गाने वालो ! देखो, मेरी हालत को, मेरे सुख को, और मेरे जीवन निर्वाह को देखो ! आह ! स्वार्थी-संसार तेरा बुरा हो, पिता चाहता है कि लड़की चाहे नर्क-दुख ही क्यों न उठाये !—परन्तु घर मालदार हो ! मेरी समाज में प्रतिष्ठा रह जाये, पीछे चाहे भलेही बण्टाधार हो ! हाय ! इस समाज को

आग में जाने कितनी सुकुमारियाँ अपने सुख, सौन्दर्य, को भस्म कर चुकीं ! ओह परमात्मा, दीनबन्धु ! समाज को सद्बुद्धि दो ! उन्नत-पथ की ओर उसे लगाओ !

(बैठजाती है)

* पट-परिवर्तन *

छटवां दृश्य

(स्थान—दारोग़ा दुर्जनसिंह का एक कमरा, हथकड़ी-बेड़ी से मजबूर शारदा और बिनोदिनी गारही हैं ।)

गायन

दुनियाँ सपने की-सी कहानी !
बनता क्यों नाहक़ अभिमानी ?
आज जिसे तू अपनाता है,
ख़ाक वही कल बन जाता है;
बतला तेरा क्या नाता है ?—
पल-भर की मिहमानी !
रंग-बिरंगे पंक्षी बोलें,
बन में, मन में मधु-रस घोलें;
डाली-डाली मधुकर डोलें !—
मिलती कल न निसानी !

आज जिसे तू शीश झुकाता,
कल उसको पद से ठुकराता;
'भगवत्'-प्रेम न मन में लाता !—
सहता नित-नित हानी !

शारदा—अह ! अभागी मौत ! तूने भी ऐसे वक्त में मेरा साथ छोड़ दिया ! मुझ अभागिनी दुखिया को ख़बर भूलगई ! कहाँ है ?—कहाँ है ? मुझे अपने कराल-गाल का शिकार बनाले, (रोकर) ओह ! दीन-पालक ! मेरी ख़बर लो ! नही, नही तुम मेरा साथ न छोड़ो !! केवल तुम्हारी ही शरण है—तुम्हारा ही आसरा है !

बिनो०—बहिन, शारदा ! परमात्मा ही हमारा मददगार है ! बाक़ी तमाम संसार, स्वार्थी और मतलब का यार है ! जब तक मतलब है, और अपने दिन सीधे हैं, तब तक आदर है, और प्यार है ! बुरे दिनो के फेर से दोस्त भी दुश्मन बनते हैं—और चारो तरफ़—फटकार है ! और बहिष्कार है !! न इज्ज़त ! न आदर ! हर तरफ दुश्मनों का ख़तर !—बुरे दिनो में—

अगर हीरे को छूते हैं तो पत्थर हाथ आते हैं !
जिधर भी देखते हैं हर तरफ़ दुश्मन दिखाते हैं !

शारदा—यही तो गर्दिश के दिनों का फेर है ! हमारी रक्षा के लिए रखी गई पुलिस ही हम पर वार करती है—हम अनाथिनी अबलाओं पर अत्याचार करती है !

बिनो०—बहिन ! इस कम्बख्त दुर्जनसिंह दारोग़ा ने हम लोगों को—गिरफ्तार कर अपने ही घर क्यों रक्खा ? हमारा नाम रजिष्टर में क्यों न दर्ज किया, आख़िर यही तो उसका कर्तव्य था ?

शारदा—कर्तव्य ?—कर्तव्य वही देखता है-जिसका हृदय साफ होता है ! जिसकी नीयत और दामन पाक़ होता है ! जिसकी आँखों मे शरारत का विकार नहीं होता, और जिसकी बाणी में अनुचित और नीचता पूर्ण उद्गार नही होता !

बिनो०—(जल्दी से) बहिन, ठहरो, ठहरो, मालूम होता है वही नर-पिशाच हमें सताने के लिए फिर आरहा है !

शारदा—(निराशा से) आने दो, आने दो, उस खूँखार धर्म लूटने वाले डाकू को आने दो !—

हैं भारतवर्ष की महिला, उसे सब-कुछ दिखा देंगी,
न डरतीं मौत से भी हम, सबलता यह दिखा देंगी;
पड़ेगी शानपर आफ़त रखेंगी आन को अपनी—
न होगी जान की पर्वाह उसे लेकिन सज़ा देंगी !

बिनो०—निश्चय ही, बहिन ! धार्मिक मर्यादा का ख़याल ही हमारा कवच है ! वही हमारी रक्षा .....!

(दारोग़ा दुर्जनसिंह का—चूड़ीदार पैजामा, कुरता पहिने नंगेसिर—प्रवेश, क्षण-भर दोनो की ओर देखने के बाद ।)

दारोग़ा--अय नादान औरतो ! क्या विचार किया ?--मेरी बतलाई हुई--बातें स्वीकार हैं ?

शारदा—नही, उन सब बातो से हजार बार इन्कार है !

दारोग़ा--(ज़रा मुलामियत से) देखो इस तरह भूखे मरने से कोई नतीजा न निकलेगा ! सिवा इसके कि शरीर शिथिल हो और मौत का सामना करना पड़े ! क्या तुम नहीं जानती मैंने तुम्हारे साथ कितना अच्छा सलूक किया है ? बजाय हवालात की गंदी कोठरी के अपने घरको रहने के लिए दिया है ! और बजाय सख्ती के मुलामियत और शराफ़त से काम लिया है।

शारदा--दारोगा साहिब, ऐसी शराफ़त और मुलामियत को हम दूर से प्रणाम करती है ! जिसके भीतर अधर्म छिपा हो ! और ऐसे मिष्टान्न को ठुकराती हैं जिसमे ज़हर मिला हो !

दारोग़ा—देखो, मैं तुम्हे बार-बार समझता हूँ, तुम्हारे भले की कहता हूँ; मेरा कहा मानो--और ऐशो आराम से जिन्दगी बसर करो !

विनो०--दारोगा साहिब, डर करो, ईश्वर का डर करो, हम अनाथ-अबलाओ पर जुल्म करते—डरो !

दारोग़ा--(उपेक्षा से हँसकर) अहा ! डर ? शेर-दिल डाकुओं को गिरफ्तार करने वाला, बन्दूक, पिस्तौल, तलवार और भाले की क्रीड़ा मे रहने वाला—एक जवाँमर्द दारोग़ा डर करे ? हः हः हः यह झूँठी बात है ! मेरे सामने इसकी क्या औक़ात है ? क्या तुम लोग नहीं

समझती कि डाके में तुम्हारा चालान हुआ है—और वैसी हालत मे आठ-दस वर्ष को जेलखाने की बन्द कोठरियो में भेज देना मेरे बाँये हाथ का खेल है !··· मगर नहीं, मै तुम्हारे साथ कोई बुरा बर्ताव करना नहीं चाहता, मै चाहता हूँ कि तुम दोनो को अपने ही घर रखूँ ! और ऐसो आराम से जिन्दगी-बसर करूँ ?

शारदा—बस, चुप रहो, जुबान सँभाल कर बातें करो !

दारोगा—(नर्मी से) अँय ! ज़रा-सी बात मे इतनी नाराज़ ? इतना खफा ? मगर ·····यह अदा·····भी प्यारी शारदा·····!,

विनो०—दारोगा साहिब, देखिये हम लोग बार-बार आपसे कहती हैं—आप जुबान सँभालकर बाते कीजिये, हम हिन्दू कन्याऐं हैं—वेश्याऐ नही, जो इस तरह अपमान सहेंगी !—क्या आप के कन्याऐ नही ? ज़रा होश मे आइये, हम आपकी कन्याओ के बराबर हैं !

दारोगा—यह तो झूँठा-झगड़ा है ! देखो अब भी सँभल जाओ, कुछ नही बिगड़ा है ! वर्ना याद रक्खो—कि कही मुझे क्रोध आगया तो ·····मगर नहीं, तुम्हारी यह मोहिनी सूरत ! और यह मदमाती आँखें ? उफ़ ग़ज़ब का····· प्यारी ···· प्यारी····· शारदा····· एक ·· बा···र·····!

शारदा—(क्रोध से) बस, कम्बख्त, बे-हया, बेशर्म, चुप हो ! अपनी कैंची की तरह चलती हुई जबान को लगाम दे !

बिनो०—नीच ! नालायक !! कामी कुत्ते दूर हो !!! हटजा, हमें न सता, क्या यही तुम लोगों का कर्तव्य होता है ?—

'हमें अब मत सता ज़ालिम कि दुख तूभी उठायेगा
हमारी आह के बलपर तुझे ईश्वर सतायेगा।,

दारोग़ा--(क्रोध से) बस, चुप रहो ! कमीनी औरतो ! समझ-लिया कि सीधी तरह तुम लोग राह पर न आओगी ! ·····ओफ़ ! मेरे हाथ में रहते हुए मेरी मर्ज़ी के खिलाफ़ चलने का तुम्हें क्या अख्त्यार है ?

शारदा—नहीं. यह आपका हम लोगों पर पाशविक-अत्याचार है!

विनो०—परन्तु फिर भी दयालु ईश्वर हमारा मददगार है।

दारोगा—(आश्चर्य से) हैं ! इन हथकड़ी-बेड़ियों से मजबूर हालत में भी यह साहस ?—यह यक़ीन ?—यह विश्वास ?—देखो, इस तरह भूखे रहकर दमकते हुए सोने-से शरीर को मत सुखाओ ! मेरी प्यारी··· ····· दिल की रानी····· ज़रा इधर आओ !

(दारोग़ा शारदा की ओर बढ़ता है वह पीछे हटती है)

शारदा--(भय से आकुलित होकर) हट ! हट !! नीच, चाण्डाल दूर हट !!! एक हिन्दू कन्या को कलंकित न कर !

दारोग़ा--(दुलार से) प्यारी ! इस तरह निराश न करो, देखो मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ, तुम्हारा·····।

शारदा--नहीं, तुम मेरे दुश्मन हो, शत्रु हो, मौत हो, ज़रा होश में आओ, और इस नीच खयाल को दूर हटाओ !

दारोग़ा--अगर मैं सख्ती से पेश आऊँ तो तुझे कौन बचावेगा?

शारदा--वही बचायेगा, जो अनाथों का मददगार है ! और जिसकी महिमा अपरम्पार है !!

(आकाश की ओर देखते हुए)

दारोग़ा--मगर मेरे फन्दे में पड़कर उसका याद करना बेकार है।

'बुरा जब वक्त आता है मदद फिर कौन आता है?
हिरण को शेर के मुँह से नहीं कोई बचाता है।'

बिनो०--नहीं, यह तो पापी-हृदय का झूँठा ख़याल है।--

'कि फणधर हार बनता है गले के वास्ते सुन्दर--
धरम ही लाज रखता है कि जब जालिम सताता है।,

दारोग़ा--(क्रोध से) अच्छा, देखता हूँ कि तुम दोनों को अब कौन बचाता है ? कौन यहाँ आने की हिम्मत दिखाता है ?

(दारोग़ा, शारदा का हाथ पकड़ना चाहता है, उसी समय विनोदिनी हथकड़ी भरे हाथ दारोग़ा के सिर पर मारती है। वह कई क़दम पीछे हटता है, और सिर थामकर बैठ जाता है। फिर मिनट-भर बाद क्रोध से)

दारोग़ा--यह बदमाशी ? अच्छा ठहरो ! अभी देखता हूँ--तुम कितनी शरारत से भरी हो ? (पिस्तौल निकाल कर शारदा का निशाना बनाता है)

शारदा--(जोश के साथ) दारोग़ा साहिब ! याद रखिये, एक भारतीय-बालिका का शील हरण करना--अस्मत पर हाथ उठाना--मौत को बुलाना है, उसे निमन्त्रण देना है !! तुम भलेही सभ्यता की आड़ में शिकार खेला, परन्तु त्रिलोकीनाथ सब-कुछ देखते-जानते हैं

दारोगा--शारदा! मैं अब तेरी कुछ भी बात सुनना नहीं चाहता! अब तक फ़ैसला समझाने पर था। परन्तु अब, यह छः नली पिस्तौल उसका फ़ैसला करेगी! बस, सँभल जा......!,

(इसी समय मौक़ा पाकर विनोदिनी पीछे से धक्का देती है! पिस्तौल दूर जा गिरती है! शारदा लपककर, पिस्तौल उठाकर दारोगा का निशाना बनाती है!)

(नैपथ्य में वाद्य)

* पट-परिवर्तन *

सातवां दृश्य

(स्थान--उपवन, प्रभाचन्द्र (शारदा के पति) और प्रकाशचन्द्र (ज्ञानचन्द्र के मित्र) का टहलते हुए बातें करना—)

प्रकाश०--यह अच्छी तरह माना जा सकता है कि तुम्हारे भाग्य का ज़रूर दोष है! विवाह कार्य में विघ्न का आ जाना ही इसका सबसे बड़ा सुबूत हो सकता है! मेरी समझ में इसमें उन त्रिपुण्ड धारी पण्डितों का भी दोष है--जो दक्षिणा की जल्दी में अष्टम-षष्टम विवाह सांध देते हैं! और दोष-गुण की ओर आँख नहीं उठाते!

प्रभा०—बेशक, यह तो सब-कुछ है! परन्तु--मेरे इस विवाह-काण्ड से पिताजी को बहुत-बड़ा सदमा पहुँचा है!

उन्हें मुँह दिखाने के लिए भी जगह नहीं रह गई !—सारी इज्ज़त-आबरू ख़ाक में मिलगई !

प्रकाश०—सही है, इधर ज्ञानचन्द्र की भी प्रतिष्ठा, कीर्ति, आबरू सब-कुछ मिट्टी मे मिलगई ! धनिकों की अत्याचार-अग्नि मे पड़कर वह बेचारा जेलखाने मे, नर्क का दुस्सह-वेदना सहन कर रहा है ! अफसोस, मैं उसका एक सच्चा मित्र होते हुए भी, उसकी सहायता नहीं कर सका, उसकी रक्षा के लिए इस अन्धी-समाज से पाँच हज़ार रुपये का बन्दोबस्त न कर पाया ! जहाँ लोग नाम की चाह मे आकर हजारो रुपया—कॉलिजो, स्कूलो, और विधवाश्रमो को दे डालते है ! वहाँ अपने एक बदनसीब-भाई की इज्जत के लिए एक-पैसा देना भी पाप समझा जाता है !

प्रभा०—अवश्य ! यही हमारी समाज की शोचनीय दशा है !

परन्तु—मित्र, तुम्हे शायद विश्वास न होगा ! कि यदि आज मैं इस लायक़ होता, तो ज्ञानचन्दजी के लिए यह दिन नसीब न होता ! पर परमात्मा का मालूम होता है, यही मंजूर था !

प्रकाश०—बेशक, आपका कहना सही है ! मै समझता हूँ कि आप भी मेरे विषय में ऐसा ही अनुभव करते होंगे ! ओफ़ ! मैं लाचार हूँ-मजबूर हूँ-कि मेरे भाग्य में ही दूसरे का उपकार करना नहीं लिखा है ! इधर जिस दिन से मित्र ज्ञानचन्द्र हम लोगो से अलग हुआ है ! उस दिन से मेरा तो खाना-पीना, सोना-बैठना सब-कुछ छूट-सा गया है !

प्रभा०—बेशक, ऐसा ही होता है ! परन्तु अन्त में मनुष्य धैर्य ही की शरण लेता है !

प्रकाश०—सही, है मित्र प्रभाचन्द ! मगर धैर्य भी मनुष्य को उदासीन और चिन्ता ग्रसित होने से नहीं रोक पाता यही कारण है, कि आज यह हरा-भरा सुवासित-उपवन भी श्मशान की तरह दिखाई दे रहा है ! इधर ज्ञानचन्द्र के छुटकारे की चिन्ता तो सिरपर सवार ही थी ! कि शारदा और विनोदिनी को छुड़ाने का बोझ और आ पड़ा !

प्रभा०—(आश्चर्य से) हैं ! यह आप क्या कहते हैं ?—क्या शारदा और विनोदिनी उस दुष्ट के चंगुल मे फँसगईं ?

प्रकाश०—हाँ, मित्र ऐसी ही बात है ! वह दोनों भोली कन्याऐं घटना-चक्र मे पड़कर गिरफ्तार होगईं ! मगर इस मामले में भी उसी दुष्ट का हाथ है, जिसने ज्ञानचन्द्र को फँसाया है !

प्रभा०—(कुछ सोचकर) अफ़सोस ! तब क्या वह भी जेल चली गईं ?

प्रकाश०—नहीं, अभी तक उनका नाम थाने मे भी प्रकट नही हुआ, बल्कि लम्पट दुर्जनसिंह दारोगा ने उन्हे घर में ही क़ैद कर रक्खा है ! इसलिए कि उसके हृदय में भी पाप है ! प्रभाचन्द्र ! क्या तुम इस काम मे मुझे मदद दे सकते हो ?—ज़रा साहस करो ! मेरे साथ चलकर उस बदमाश को सज़ा दो, और दोंनो अबलाओ की रक्षा करो !

प्रभा०—स्वीकार है, सहर्ष स्वीकार है। प्रकाशचन्द्र जल्दी करो, और चलो! सम्भव है कि वह नराधम उन दोनों को दुनियाँ से न उठादे। उसके घर से निकाल लाना कोई बड़ी बात नहीं, वह दुष्ट इस बात को प्रघट भी न कर सकेगा! क्यों कि कानून की सीमा उसीने तोड़ी है!

प्रकाश०—बेशक! यही बात है, अच्छा तो चलो!

(दोनों का प्रस्थान)

* पट-परिवर्तन *

आठवां दृश्य

(स्थान—दारोग़ा का वही कमरा, शारदा और बिनोदिनी जंज़ीरों में जकड़ी हुई उदास-चित्त बैठी हैं। पास ही दो कुर्सियाँ पड़ी हैं जिनपर दारोग़ा और सेठ रामदास बैठे हुए हैं)

दारोगा—(सेठजी से) सेठजी, ग़ौर आपके कहे हुए को मैं इन दोनों को बहुत-कुछ समझा-बुझा चुका, लेकिन इनकी समझ में कुछ नहीं आता!

सेठजी—मगर फिर भी कोशिश करना मनुष्य का फर्ज़ है! (शारदा से) शारदा! अब भी देख—सोचले, विचार ले, मेरे यहाँ रहना स्वीकार करले, अभी तुझे छुड़ा लूँगा, और .....तमाम धन-दौलत, जमीन-जायदात तेरे नाम कर दूँगा, जिससे सारी ज़िन्दगी सुख से गुज़रे!

शारदा—अय, नर-पिशाच ! पिताजी को जेल भिजवाकर—मुझे इस नर्क-कुण्ड में ढकेलकर भी तेरी हृदय की ज्वाला न बुझ पाई ! दूर हट, मुझे अपनी मनहूस सूरत दिखाकर और न जला ?

सेठ—शारदा ! इस तरह क्रोध करने से कुछ नतीजा न निकलेगा, अगर तू मेरी शर्त मंजूर करेगी, तो मै तेरे पिता को भी छुड़ा दूँगा, और क्या तू यह नहीं जानती कि इस समय तू मेरे कब्जे में है !

शारदा—(क्रोध से) क्या तेरे जैसे पापी के कब्जे में ? नहीं, नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, यह शरीर जब तक बरकरार है, तब तक परमात्मा के आधार है !

दारोगा—(बीच में) नहीं, यह गलत बात है ! तुम लोग हमारी आत्मा हो, और सेठ रामदास की कर्जदार हो, इसमें परमात्मा कौन हकदार है ?

विनोद—दारोगा साहब, आप अपने ही तक रहिये, परमात्मा तक पहुँचने की चेष्टा न कीजिये ! उन सर्व-शक्ति शाली परमेश्वर की ओर कटाक्ष न कीजिये !!

सेठ—दारोगा साहिब, रहने दीजिये, इन कम्बख्तों से सिर खपाने में कोई नतीजा हासिल न होगा ! मेरी राय में इन्हे कोई सख्त तकलीफ़ दीजिये, फिर सीधी-राह पर आते देर न लगेगी !

दारोगा—बेशक, आपका कहना बजा है ! मगर इन लोगो ने अब तक खाना तो खाया ही नहीं ! नहीं कह सकता इन लोगों का आखिर क्या उसूल है ? आपकी शर्त मंजूर नहीं, बल्कि मरजाना कबूल है !

सेठ—ऐसा नहीं हो सकता, यह इन लोगों की भूल है ! भूखा रहना हँसी खेल नहीं, वरनः सख्त मुश्किल है !

दारोगा-(दोनो से) अय, बदनसीब और हठीली, औरतों तैयार हो जाओ ! मौत की खूँखार गोदो में सोने के लिए तैयार हो जाओ !!

शारदा--(सहर्ष) तैयार हैं ! अपनी तक़दीर आज़मायस के लिए तैयार हैं !! अत्याचार की वेदी पर बलिदान होने के लिए तैयार हैं !!!—

"न रख ज़ालिम कसर वाक़ी सताले जितना जी चाहे,
मुझे जो तू रुलायेगा तुझे ईश्वर सतायेगा !"

दारोगा-(ज़ोर से) कोई है ?

कानिष्टबिल—(प्रवेश करके) जी हुज़ूर ! हुक्म ?

दारोगा-इन दोनो कम्बख्तो को मार लगाओ !

कानिष्ट०--जो हुक्म !,

(कानिष्टबिल चाबुक लेकर कभी शारदा को कभी बिनोदिनी को मारता है, वह चिल्लाती और रोती हैं ।)

शारदा--आह ! सर्वेश, रक्षा करो,·····कलेश हरो ! आओ··· नाथ अब न तरसाओ ! दयागार ! करुणा-सागर····· आ·····ओ !!!·····उफ्·····।

बिनो०--(तमककर) अय, नीच, चाण्डालो, रहम करो ! नर्क के क्रीडाओ. दया करो ! हम अभागिनी अवलाओ पर तरस खाओ !! (दर्शको की ओर)

ज़रा-सा रहम करने में नहीं कुछ शान घटती है !,
न कोई मदद करता है कि जब किस्मत पलटती है!

सेठ---सोच, सोच; विचार कर ! क्या मेरी शर्त मंजूर करना—
इस तकलीफ से भी बढ़कर है ?

अभी कुछ भी नहीं बिगड़ा बचालूँगा, छुड़ालूँगा—
कि तेरी दुख-भरी बातें मेरे दिलपर खटकती हैं !!

शारदा--आह ! आह !! ज़ालिमो ! और न जलाओ ! तक़दीर की सताई हुई इन दुखियो को ज्यादा न रुलाओ ! न रुलाओ !!

(सिपाही चाबुक मारता है शारदा गिर पड़ती है !
और मुँह से खून की धारा बहती है)

शारदा--(उठकर और हाथ जोड़कर आकाश की ओर) करुणागार ! जगत-पालक, दीन-दयाल ! कहाँ हो ?—कहाँ हो ?--ओह ! तुम्हारी मूक-प्रजा नीच, पाखण्डी, कामुकों द्वारा सताई जा रही है !·····तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? नाथ ! अनाथ रक्षक ! आओ ! ····· आओ !! अब तो इन पापियो से लाज बचाओ ! वसुन्धरे !—तुम देख रही हो ! तुम्हारी प्यारी सन्तान सन्ताप के दुख भोग रही है ! और तुम सहन करती हो ! ·····आह ! ·····आह ! आओ त्रिलोकी नाथ रक्षा करो !!

दारोगा—(उपेक्षा से हँसकर) अरे ! देखना कहीं आ न जाए ! (सिपाही से) इनके दोनो हाथो को कुर्सी के नीचे दबा दो ! इनकी हठता और मूर्खता की भरपूर सजा दो !

(सिपाही शारदा और बिनोदिनी के हाथ दोनो कुर्सियों के नीचे दबाता है ! सेठजी, दारोगा जिनपर बैठते है !)

दारोगा—बोल ! बोल !! अब कहाँ है ? ईश्वर करुणाधार !

(इसी समय पुलिस-इन्सपेक्टर के साथ प्रकाशचन्द्र-प्रभाचन्द्र का प्रवेश)

प्रकाश०—बस, खबरदार ! (इन्सपैक्टर से) देखिये हुजूर ! हम लोगो की रक्षा के लिए रक्खीगई पुलिस का यह व्यवहार ?—प्रजा के ऊपर अमानुषिक अत्याचार ?
(सब कोई घबड़ाते है–दारोगा काँपता है !)

दारोगा—(स्वगत) उफ् ! यह क्या हुआ ? गजब होगया ! मेरा सिर चकरा रहा है ! अन्धकार दिखाई देरहा है। मेरा ·····सर्व······नाश ! हे प्रभु······!

इन्सपैक्टर—वैल् ! दारोगा, यह क्या मामला है ?

(दारोगा गिर पड़ता है, सिपाही—शारदा-बिनोदिनी की हथकड़ी खोलता है)

इन्स०—(दारोगा की छातीपर हाथ रखकर) हॅय ! क्या मरगया ?
प्रभा०—जी हाँ ! अत्याचार का नतीजा मिलगया।

(सब लोग दारोगा के शवपर झुकते है-पर्दा गिरता है ! टेब्लो')

ड्राप

तृतीय-अँक !

पहला दृश्य

(ज्ञानचन्द्र का अपने मित्र प्रकाशचन्द्र के साथ बातें करते हुए आना,)

प्रकाश०—यह बात तो ज़रूर है कि कारागार के कष्टों के कारण तुम्हारा शरीर तो एकदम आधा रह गया है ! आँखें बैठ गई हैं। चेहरा पीला पड़ गया है, और कमज़ोरी तो मानो दख़ल जमाए बैठी है !

ज्ञान०—(स्नेह से) मित्र ! तुम्हारा कहना सही है ! मगर इन छैः महीनों में जो कष्ट, जो तक़लीफ़, और जो अत्याचार मैंने सहा है ! उसका देखते हुए-मेरा ज़िन्दा लौट आना, परमात्मा की बहुत बड़ी अनुकम्पा है ! उफ़ ! वह जेलखाना नहीं, बल्कि नर्क-कुण्ड है ! अपने मद में मस्त सिपाही से लगाकर बड़े अफ़सर तक सभी दया-शून्य, वज्र की तरह कठोर; और मौत की तरह निर्दय हैं दया और उपकार का नाम तो मानो नाग के मुख में अमृत को तलाश करना है !

प्रकाश०—(आश्चर्य से) हँय ! यह क्या कहते हो मित्र

जेलखाना, पापी, दुराचारी, अपराधी कैदियों को सुधारने का कारण—पश्चाताप की ज्वाला में भस्म होने का साधन है, या अभागे कैदियो को जलती हुई भट्टी मे झोंक देना है।

ज्ञान०—बेशक ! जलती हुई भट्टी में झोंक देना-सुगम है ! उसमें डाला हुआ अभागा-मनुष्य एकबार ही में जलकर ख़ाक हो जाता है ! परन्तु—जेलख़ाने मे पड़ा हुआ व्यक्ति—शोच, चिन्ता, दुख, कलेश, मार और तिरस्कार की जंग लगी हुई तलवार से क़त्ल किया जाता है ! उसके धर्म और ईमान को मिटा दिया जाता है।

प्रकाश०—(रुककर) क्या बीमार कैदियों के साथ सहानुभूति नहीं दिखाई जाती ? उनके लिए औषधि और भोजन की उचित व्यवस्था नहीं होता ?

ज्ञान०—सब-कुछ होता है ! परन्तु दिखावटी और बनावटी ! जो डाक्टर की नगदी-नक़द से पूजा करता है—वह तो मानो गये हुए जीवन को पुनः लौटा लेता है ! और जो सूखा-सत्कार करता है, वह मृत्यु का आमंत्रण करता है।

प्रकाश०—(निराशा से) ओफ़ ! यही सबब है कि तुम्हारी सारी तन्दुरुती मिट्टी में मिलगई !

ज्ञान०—(सिर झुकाकर-कुछ रुककर) मित्र, प्रकाशचन्द्र ! और तो सब कुशल है ? शारदा, बिनोदिनी अच्छी तरह हैं ?

प्रकाश०—हाँ ! अब तो ईश्वर की कृपा से कुशल है ! परन्तु आपके पीछे दोनों बड़ी मुसीबत में फँसगई थीं ! पापी

रामदास ने उन्हें पुलिस के हाथों गिरफ्तार करा दिया था ! और·····तब मैंने और प्रभाचन्द ने इन्सपैक्टर को साथ ले जाकर दुष्ट दारोग़ा का अत्याचार दिखा दिया।

ज्ञान०—ओफ़ ! मामला यहाँ तक बढ़ गया ?

प्रकाश—जी, हाँ ! आखिर शर्म, दहसत, घबड़ाहट, और बदहवासी के कारण वह दुष्ट उसी क्षण मर गया।

ज्ञान०—(आश्चर्य से) ऐं ! मरगया, सच है दुनियाँ में मनुष्य का जीवन कांच के प्याले से बढ़कर है। यह सही है, कि देखने मे सख्त है, मगर टूटने का हमेशा डर है !! परन्तु मनुष्य इतने पर भी अपने विवेक को काम मे नहीं लाता। दया, परोपकार, और धर्म का रास्ता उसे नहीं सूझता, अपने क्षणिक ऐशो-आराम के लिए दीन और दुखियो को सताता है, आखिर पश्चाताप करता है, और बुरी मौत मारा जाता है।

प्रकाश०—सब-कुछ होता है ! परन्तु—स्वार्थ के पर्दे से कुछ भी नज़र नही आता—

पकड़ जिसने लिया है पाप औ' अभिमान का रस्ता,
दिखाई दे नहीं सकता उसे भगवान का रस्ता !
इधर दीनों की रक्षा है उधर दुखियों को दुख देना,
जुदा ईश्वर का रस्ता है जुदा इन्सान का रस्ता !

ज्ञान०—बेशक ! तुम्हारा कहना सच है ! संसार अच्छे-बुरे, शरीफ़ और बदमाशों का सम्मेलन है ! जहाँ शराफ़त और भलमनसाहत है ! वहाँ सुख और आदर, प्रेम और इज्ज़त है ! और जहाँ अपनी प्रतिष्ठा का ज्ञान नहीं ! दुखियों का सन्मान और ग़रीबों को दान नहीं, वह मनुष्य नहीं बल्कि मुर्दा है-और वह गृह नहीं, बल्कि श्मशान है !—

नारी की शोभा शील से है और नर की शोभा ज्ञान से है !
नर-तन की ईश्वर भक्ति से है और धन की शोभा दान से है !!

प्रकाश०—परन्तु—आज तो उल्टा नज़ारा है-हर किसी को धन ही प्यारा है !—

नहीं है रूप की इज़्ज़त नहीं विद्वान की इज़्ज़त !
जहाँ में हर तरफ़ देखा कि है धनवान की इज़्ज़त !!

ज्ञान०—सत्य है ! परन्तु—क़द्रदान ही जवाहिर की क़द्र किया करते है, यह स्वार्थी और धन के उपासक—जो ग़रीबों का रक्त शोषण करते नहीं शर्माते, दुखियों का जीवन तक नष्ट करते नहीं सकुचाते—वह पापी दुष्ट और नीच-राक्षस आख़िर क्या बुरा फल पाते है ! (रुककर) ओह ! संसार बड़ा परिवर्तनशील है ! वह समय जब बेचारी निरापराधिनी शारदा के विवाह संस्कार में दुष्ट रामदास ने विघ्न किया था !—कितना भयंकर था ! सचमुच प्यारे मित्र ! तुमने ही तब मेरी डूबती हुई किस्ती को बचालिया था । मेरे पीछे भी अपने हाथों

कन्या-दान कर बेचारी शारदा के जीवन को सरसब्ज किया था !

प्रकाश०--(नतमस्तक होकर) वह मेरा उपकार नहीं, बल्कि कर्तव्य था ! महापुरुष प्रकाशमान् दीपक का उपकार मानते हैं, पर वास्तव मे यह उसका कर्तव्य है ! और महापुरुषो की सहनशीलता है; कृतज्ञता है !

ज्ञान०--मित्र, प्रकाशचन्द्र ! इस समय मेरी दोनो पुत्रियाँ कहाँ है ?

श०--वह दोनो ? इस समय प्रभाचन्द्र के यहाँ सुख मे निवास कर रही है ! और उससे भी बढ़कर हर्ष की बात यह है, कि प्रभाचन्द्र को 'साहित्य सभा' की ओर से चार हजार का पुरस्कार प्राप्त हुआ है ! हिन्दी-संसार उनका काफी सन्मान कर रहा है। इसके अतिरिक्त जीवनचन्द को भी अभी-अभी रोजगार मे कितना ही--लाभ हुआ है !

ज्ञान०--(खुश होकर) अहा ! परमात्मा तू धन्य है ! तेरी महिमा अ' र पार है ! यही शब्द सुनने के लिए मै चिर-काल से लालायित था ! वह पूर्ण हुआ ! मित्र प्रकाशचन्द्र ! चलो, एकबार इन भाग्य-शाली आँखो से पुत्रियों को सुखी देखलूँ ! कौन जाने जिन्दगी मे क्या है ?

प्रकाश०-- लि ।

(प्रस्थान)

* पट-परिवर्तन *

दूसरा दृश्य

(स्थान--रामदास का मकान, सेठजी जमीन पर चित्त पड़े हुए है ! मि० नरेन्द्र छाती पर पिस्तौल ताने-मारने की धमकी दे रहे हैं)

नरेन्द्र—बस, मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, सीधे हाथ से रुपये दो ! वरन: अभी पिस्तौल का निशाना बनाता हूँ !

राम०--(आजिजी से) बेटा नरेन्द्र ! क्या अपने बूढ़े बाप का ही निशाना बनायेगा ? शिकार के शौक़ के लिए क्या पिता का ही आसरा है ? देख, अब भी सँभल जा ! अपनी हालत को खयाल कर ! मेरे बुढ़ापे की ओर देख

नरेन्द्र--(क्रोध से) देख लिया, सब-कुछ देख लिया ! तुम्हारा यह कोई हक़ नहीं, कि आप चैन से ज़िन्दगी बसर करो, और मै एक-एक पैसे के लिए मुहताज़ बना रहूँ ! दर-दर ठोकरें खाऊँ ? और आह ! इस जलती हुई हृदय-ज्वाला को भी, अपनी प्यारी शराब की दो-प्यालियाँ डालकर न बुझा पाऊँ ?

राम०--बेटा ! क्या तू नही जानता, कि इस शराब की ज़हरीली-आग ने करोड़ों घर जलाकर खाक कर दिये। हज़ारो कुलवालो के धर्म और धन का नाश कर दिया ! उन्हें जीते-जी कंगाल बनाकर मौत का रास्ता दिखा दिया !!

नरेन्द्र—नही, कभी नहीं; यह तुम्हारा झूँठा खयाल है। बे-बुनियाद का जाल है ! शराब मनुष्य को हिम्मत और दिलावरी का पाठ पढ़ाती है ! यह ईश्वर की नियामत

है, ज़िन्दगी की उल्फ़त है, जो नहीं पीता वह किस्मत-हीन और कम्बख्त है !!

राम०—(डपटकर) हँय ! यह बात ? बेटा नरेन्द्र ! आँखों वाले को अन्धा न बतला ! सूरज के प्रकाश में चिराग़ न जोड़, और मुझ ज़माना देखे हुए बुड्ढे को शराब की तारीफ़ न सुना, बेटा ! यह शराब, हम कुलीनों के छूने योग्य भी नहीं ! वह तो नीच-पतित लोगों का पेय है !

नरेन्द्र—नहीं, कदापि नहीं, यह किस्मत वालों की जान है, और-परमात्मा का दिया हुआ प्रेमियों का प्रेम-दान है !

राम०—(स्वगत) हँय ! इतना पतन ? मेरे हृदय के टुकड़े का यह हाल ? मेरे प्यारे पुत्र की यह दशा ? मेरे भाग्य का मेरे साथ यह नीच बर्ताव ? हे जगद्बन्धु ! दया करो ! (नरेन्द्र से) बेटा, इस पापिनी के नशे को दूर कर ! मेरी शिक्षा को, मेरे कहे हुए बचनों को मंजूर कर ! मेरी आत्मा को, मेरे हृदय को—सुख दे, धैर्य दे !! (रुककर) यह शराब मनुष्य की शत्रु है ! आत्मिक-ज्ञान का नाश करती है ! भले-बुरे का भेद मिटाती है—और निर्लज्जता का पाठ पढ़ाती है !

नरेन्द्र—(तमककर) बस, बस, चुप रहो, मेरे शब्दों का ख़याल करो, और मुझे····· पाँच सौ रुपया देकर जल्दी विदा करो !·····अहा ! मेरे प्यारे मित्र मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे !·····बस, बस, जल्दी करो—रुपया दो या मौत का रास्ता लो !·····बोलो ?

राम०—बेटा, देख यह स्वार्थी-मित्र तेरे नहीं बल्कि धन-और-दौलत के हैं ! जब तक तेरे हाथ में पैसा है—तब तक

वह मित्र है--हमदर्द है! जब न रहेगा तब समझ पायेगा कि--खुदगर्ज़ है!

नरेन्द्र--नहीं, यह होना बिल्कुल ग़ैर मुमकिन है! तालाब का फूला हुआ कमल, सूरजपर जितना प्रेम रखता है! और--संग्राम मे बहादुर अपनी तलवार पर जितना इत्मीनान करता है! उतना ही विश्वास, उतनी ही श्रद्धा, उतना ही प्रेम, मैं अपने मित्रों पर करता हूँ!

राम०--नहीं यह तेरी भूल है!

नरेन्द्र--(दृढ़ता से) हर्गिज़ नहीं, यह तुम्हारी ना-समझी है। और इस लिए कहना भी फिज़ूल है! बस, जल्दी करो! रुपया लाओ! व्यर्थ बातों मे न बहलाओ।

राम०--नरेन्द्र! इस तरह कैसे गुजर चलेगी? कल ही तो दो-सौ रुपया ले गया था! वह क्या हुए? कहाँ गये?

नरेन्द्र--वही हुआ, जो होना चाहिये था! जो मुनासिब था--लाजिम था! मगर इन बातों मे तुम्हे क्या सरोकार? बस, निकालो रुपया? नहीं तो इधर देखो--यह हाथ का हथियार तुम्हारी जान का ग्राहक बना चाहता है!

म० - (गंभीरता और दीनता से) बेटा··· ···।

नरेन्द्र--बस, चुप रहो, बेटा कहने पर शर्माओ! कहना सुगम लगता है--और पैसा देने मे दम निकलता है! नहीं, नहीं; मैं अब नहीं बर्दास्त कर सकता! बोलो! बोलो!! रुपया देते हो या मौत चाहते हो? जल्दी कहो--एक! ·····दो!! ·· ···· !!!

राम०—(घबड़ाकर) ठहर ! ठहर ! देता हूँ. (ऊपर देखते हुये) हे परमात्मा ! सब-कुछ कर, परन्तु-कुपुत्र को जन्म न दे ! (सेठजी उठकर पाँच-सौ के नोट नरेन्द्र के हाथ में देते है ! नरेन्द्र पिस्तौल जेब में रख, खुशी-खुशी जाता है)

राम०—(स्वगत) आह ! जगदीश्वर ! संसार के दुखों का क्या ठिकाना है—सचमुच में जेलखाना है ! नरेन्द्र को लाख समझाया-बुझाया ! परन्तु-बिल्कुल बे असर रहा ! अब ··· ?—अब क्या करना चाहिये ! (कुछ सोचकर) बस, अब इसके सिवा और कोई उपाय नहीं, कि पुलिस के हाथों इसे गिरफ्तार कराकर जेल भिजवा दूँ ? इस तरह कुछ दिन इसके उत्पातों से बचूँगा, और यह भी जब जेल से लौटकर आयेगा—तो सीधा और शरीफ बन आवेगा ! ······ (रुककर) हाँ ! यही ठीक रहेगा, चलकर पुलिस को इत्तला दूँ—और इस नालायक को इस तरह भरपूर सजा दूँ ! (ठहर कर) ऊँह ! बदनामी और नेकनामी का डर ? अच्छे और बुरे किन्तु—कमजोर दिलों की बात है ! उनपर खयाल करना महज़ बेवकूफी है ! नालायक पुत्र को सजा देना—पिता का कर्तव्य है ! क्या अपने सड़े हुए जिस्म को लोग नहीं कटवा डालते ? सब-कुछ होता है। परन्तु यह मेरे मन की भ्रान्ति है, कि बार-बार, सोचता हूँ. विचार करता हूँ ! बस, अब कोई विचार न करूँगा—वरना कहाँ तक शराब की भेंट चढ़ाता रहूँगा, और कबतक इस तरह जुल्म सहूँगा—?

"अब तो फिरने को है नादानी से किस्मत, उसकी !
रंग लायेगी न अब दिलपै मुहब्बत, उसकी !!"

(प्रस्थान)

* पट-परिवर्तन *

तीसरा दृश्य

(स्थान—मिष्टर नरेन्द्र का बैठक-खाना, मेज पड़ी हुई है-शराब की बातलें, प्यालियाँ, फूलदान, टाइमपीस वगैरह-वगैरह रक्खी हैं। अगल-बगल कुर्सियाँ हैं--जिनपर मिष्टर-नरेन्द्र तथा मित्रगण विद्यमान हैं, नृत्य-गान होरहा है।)

नरेन्द्र—दोस्तो, शराब भी क्या न्यामत है ? जिन्दगी की जान है। यह है तो जहान है, नहीं तो चारो तरफ़ सूनसान है। इसके बिना तबियत रहती परेशान है।—

नाम कैसा है अहा ! लोक में इसका 'हाला' ?
रंज-गम देती मिटा, करती हृदय-मतवाला !

रमेश--वाह ! वाह !! क्या कहना है ? यही तो मेरा भी ख़याल है।

प्रेम०---क्या ख़ूब ? ढलने दो यार नरेन्द्र ?

विनोद—मँगाओ मित्र ! किसका इन्तजार है ?

नरेन्द्र—(आनन्द कुमार के हाथ में नोट देकर) ले जाओ दोस्त ! लेजाओ !!

आनन्द—(नोट लेकर) बहुत अच्छा ! अभी लीजिये, सरकार !—

(प्रस्थान)

नरेन्द्र—वाह ! वाह !! ईश्वर ने शरीफ़; और तमीज़ मन्दों के लिए यह क्या ही अमृत की धार बहादी है ?

प्रम०—दर असल ?—गोया बहिस्त की एक झलक हम लोगों को यहीं पर दिखलादी है !

(शराब, प्यालियों मे ढलती है—प्यालियाँ मुँह तक पहुँचती हैं। इसी समय पुलिस आती है ! दारोगा लपक कर नरेन्द्र को गिरफ्तार करता है। सिपाही कमर में रस्सी बाँध देता है)

दारोगा—नरेन्द्र ! मै तुम्हे गिरफ्तार करता हूँ, सेठ रामदास को मार डालने की धमकी देना, और हजार रुपया उनकी तिजोरी से ताला तोड़कर निकाल लाने के अपराध में···!

नरेन्द्र—(घबड़ा कर) ऐ ! ··· हॅय ! यह क्या ? दारोगा साहिब क्या आप मुझे गिरफ्तार करते हैं ? हे भगवन् यह क्या ? मै आपसे क़सम खाकर कहता हूँ कि·····!

दारोगा—(डपटकर) बस, चुप रहो, चलो इधर !

(सिपाही रस्सी खोचता है !)

नरेन्द्र—(हताश होकर) दोस्तो अब क्या करूँ ?—बताओ, बताओ अब क्या करूँ ?

फँसा हूँ गर्दिशे-दुख में, बचाओ काम आओ तुम!
अजब हैरान है तबियत, कि आफ़त से छुड़ाओ तुम!!
नहीं करता रहम ईश्वर मेरी इन सर्द-आहों पर—
करो तजबीज़ अब जल्दी, न कुछ देरी लगाओ तुम!!

प्रम०--(रुखाई से) क्यों पागल-पन की बातें करते हो, हम भला तुम्हें कैसे बचा सकते हैं ?--

बचा सकता नहीं है मौत के पञ्जे से कोई भी—
छुड़ादें किस तरह तुमको ज़रा यह तो बताओ तुम?

नरेन्द्र--आह ! यह क्या कहते हो प्रेमचन्द ? मेरे दिलकी आशा को मत तोड़ो, मेरे हृदय को दुनियाँ को बिस्मार न करो !—

क्यों बोलते न प्रेम से कैसा ये नाज़ है?
वह रंग उड़गया कहाँ, क्या बात आज है?
होता नहीं इलाज क्या बीमार का सोचो ?—

प्रेम०-(संक्षेप मे) हमने समझलिया कि मर्ज़ ला-इलाज़ है !

रमेश--(प्रेमचन्द से) चलो न, क्यों फिजूल माथा मारते हो ?

नरेन्द्र--हँय ! यह क्या होता है ? रमेश ! मेरे प्यारे ! प्यारे मित्र रमेश ! मेरी हालत पर रहम करो, तरस खाओ; दया करो !

अजब रंग तुमपर चढ़ा देखता हूँ,
कि मैं अपनी आँखों से क्या देखता हूँ ?

रमेश—हट ! हट !! बदमाश, लम्पट-शराबी क्या बक रहा है ?

बिनोद—नरेन्द्र ! जाओ न क्यो फिजूल ही बक रहे हो ?

नरेन्द्र—हँय ! क्या तुम कोई मेरी मदद न करोगे ? नही, नही—ऐसा न करो ! मेरा सारा भरोसा, सारा विश्वास तुम पर है ! तुम्हारी ही आशा है ! और तुम लोग·····!

प्रेम०—बेवकूफ ! आखिर अपने पाप मे हमे क्यो सान रहा है ?—तेरी मशा क्या है ?

नरेन्द्र—क्या तुम मेरा कुछ भी एहसान नहीं मानते, हजारों रुपय की शराब पिलादी, सैकड़ो रुपये तुम लोगो को दे डाले। पिता से लड़कर, झगड़ कर, तुम लोगो को रुपया लाया, औरत के जेवर तक तुम लोगो के लिये कुर्बान कर दिये ! फिर भी तुम मेरा अहसान नहीं मानते. मैने क्या-क्या किया—क्या तुम नही जानते ?

प्रेम०—नही,जानता, नहीं जानता, भला ऐसा भी कोई होगा—जो दूसरे के लिए एक-पैसा भी, खर्च करदे ! आप कंगाल होजावे, और दूसरे का घर भरदे ! तुमने जो कुछ किया—अपने ऐश-आराम के लिए—जिन्दगी के लुफ्त के लिए—और नाम के लिए—किया !

नरेन्द्र—नहीं, बल्कि खुद बेवकूफ बनने के लिए और तुम लोगों के काम के लिए किया ! प्रेमचन्द बहुत दिक न करो !

मेरी रिहाई के लिए दारोगा साहिब को कुछ रुपये दो, उनकी जेब गर्म करो। और मेरी दोस्ती की जरा शर्म करो!

रमेश—बस, बस, चुप रह! बेहूदा, बत्तमीज़! ज़ुबान सँभाल कर बात कर! (चिढ़ाकर) हम रुपया दे? गोया इसके खजान्ची है! चलोजी मिष्टर प्रेम! क्यों नाहक़ वक्त ख़राब करते हो?

नरेन्द्र—(स्वगत) समझा, समझा, अब समझा! बेशक यह लोग मेरी इज्ज़त नहीं, बल्कि दौलत और मतलब की पूजा करते थे! मुझको नहीं, बल्कि शराब की बोतलों और नोटों के पुलन्दों को पहचानते थे! आह! मेरी भूल मुझे अब जला रही है—पिताजी के शब्दों की याद दिला रही है। शराब?—दुष्ट शराब! तूने मुझे बर्बाद कर डाला! तेरी नादानी और परेशानी ने मुझे बे मौत मार डाला! ओह!—

रंज-गम बे फ़ायदा है वक्त टल जाने के बाद,
पीटना धरती को क्या? अजगर निकलजाने के बाद!

आह! मुसीबत भी क्या बला है! सब परख जाते है—कि कौन बुरा और कौन भला है!! बेशक मैंने धोखा खाया, इस—शराब का ऐसा भयंकर-भूत मेरे सिरपर छाया, कि मुझे नेक और भलमन्साहत का रास्ता नज़र न आया! उफ़! अब क्या करूँ? इन मतलबी और खुदगर्ज दोस्तों ने मेरी उम्मीद तोड़दी! .... मगर ठहरो! इन लोगों को भी सज़ा दे दूँ!—

किये जो कर्म मैंने हैं बिना सोचे बिना समझे !
कोई इनको बुरा कहले कोई इनको भला समझे !!

(मित्रो से) कम्बख्तो ! हट जाओ ! मुझे अपना काला मुँह न दिखाओ ! मतलबी कुत्तो ! दूर हटो !

न तुम भी चैन पाओगे, यही मेरी दुआ होगी,
नसीहत यह मेरी होगी, तुम्हारी यह सज़ा होगी !

(नरेन्द्र जेब से पिस्तौल निकाल कर फायर करता है, गोली प्रेमचन्द के लगती है ! खून का फुहारा छूटता है ! वह मर जाता है ! सब लोग भाग जाते है !)

दारोग़ा-(घबड़ाकर) है ! यह क्या किया ?—खून ?—खून ? ज़ोर से पकड़ो ! सिपाहियो ! (दारोग़ा पिस्तौल छीन लेता है) (प्रेमचन्द की लाश की जाँच करके) मरगया, बिल्कुल खत्म ! इसे भी उठालो ! चलो, चलो, जल्दी करो !

(सिपाही नरेन्द्र को बाँधकर प्रेमचन्द को कन्धे पर रखकर ले जाते है !)

* पट-परिवर्तन *

चौथा दृश्य

(स्थान—रामदास के मकान का बाहिरी भाग, शान्ता शोकाकुल बैठी गारही है।)

गायन

जब तक दुनियाँ गुलज़ार रहे,
प्राणों में प्राणाधार रहे;
तब तक बस, एक-पुकार रहे—
भगवान कहो, भगवान कहो!

इन साँसों का विश्वास नहीं,
क्या ठीक, जो आवे साँस नहीं?
इसलिए और की आस नहीं—
भगवान कहो, भगवान कहो!

'भगवत्' सुख का है द्वार यही,
जीवन का है उपहार यही;
सबके उर हो झनकार यही—
भगवान कहो, भगवान कहो!

शान्ता--(स्वगत) लोग चाहते हैं, कि कन्या की शादी किसी बड़े-घर करूँ ? वर कैसा भी हो, दुर्व्यसनी हो, न अज़ीज हो, न तमीज़ हो, न रंग हो, न गुणों का संग हो ! चाहे भले ही अजब ढंग हो, मगर हो मालदार !

आह ! मेरी दशा को कौन जानता है ? पिता कहाने वाले का कर्तव्य तो वहीं समाप्त हो जाता है--जब कि लड़की बिदा करदी जाती है ! फिर कौन बड़े घरों की ओर देखने की तकलीफ़ गवारा करता है ? वे क्या जाने हमारी दशा जो सुख से ज़िन्दगी बिताते हैं ?

वह क्या जानेंगे दुखियों की जहाँ में ज़िन्दगी क्या है ?
मगर उनकी समझ में तो खिलौना है, तमाशा है !

'.... ओफ़ ! खून का इल्ज़ाम है, सिवा फाँसी के और क्या हो सकता है ? आह ! जगदीश्वर ! मौत दो, परन्तु—विधवा न बनाओ ! पापी और नीच कामुकों की शिकार न बनाओ ! मंगल कार्यों को अपशकुन न बनाओ ! नहीं, नहीं, मैं उनसे पहिले ही इस नश्वर-शरीर को त्याग दूँगी ! परन्तु--एक-बार—सिर्फ़ एकबार उनके दर्शन करने की अभिलाषा है ! वह यहीं होकर जायगे ! बस, अन्तिम बार इन निर्लज्ज-आँखों से उन्हे देखलूँ ! फिर जीवन-दीप को उनके चरणों पर चढ़ा दूँगी (नैपथ्य की ओर देखकर) अहा ! वह आरहे है !.... वह आये, उफ़ ! हथकड़ी पड़ी हुई हैं ! हाय ! भाग्य ....हाय ! तक़दीर...... !

(सिपाहियों के पहरे में हथकड़ी बेड़ी से मजबूर नरेन्द्र का प्रवेश)

शान्ता—(विव्हल होकर) नाथ ! नाथ !! मेरी आँखो के तारे, ज़िन्दगी के सहारे, प्राणो के प्यारे, कहाँ जाते हो ? कहाँ जाते हो····· ?

(रोती है)

नरेन्द्र—(शोकाकुल स्वर मे) शान्ता, धैर्य रक्खो, भगवान पर भरोसा रक्खो, हृदय मे उनका स्मरण रक्खो; और सदाचार पूर्ण—उद्देश्य रक्खो ! और मेरे लिए·····'

(सिर झुका लेता है)

शान्ता—(आँसू पोंछते हुए) स्वामी ! यह क्या हुआ ? तुम्हारी यह क्या दशा है ? हाय ! अब क्या होगा ? तुम्हे देखकर सन्तोष करती थी—तुम्हारी 'फटकार' और 'मार' को प्यार और उपहार समझती थी। परन्तु—हाय ! विधाता ने वह साधन भी छीन लिया ! वह आशा भी तोड़ दी ! वह जीवन-सुख भी दूर कर दिया ! प्राणाधार ! अब क्या होगा ?

नरेन्द्र—(आँखे पोछते हुए) वही होगा जो किस्मत मे लिखा होगा ! शान्ता, मेरी प्यारी शान्ता ! मुझ पतित और नीच को क्षमा करो, मेरे अपराधो को, मेरे कुसूरो को, माफ करो ! आह ! मैंने तुझे इस शराबखोरी के कारण बड़ा कष्ट दिया, बड़ी तकलीफे दी ! तुझ पर पाशविक अत्याचार किया, तिरस्कार किया, और पैसे-पैसे को मुहताज रक्खा, शान्ता ! मुझ महापापी को क्षमा करो ! मैंने अपनी करनी का फल पालिया !

शान्ता—(पैरो पर गिरकर) प्राणाधार ! यह न कहो, मुझे नक मे न ढकेलो ! नहीं, नहीं, तुम ····· !

सिपाही–(डपट कर) खबरदार ! दूर हटो, एक खूनी आसामी के पास आना, बातें करना, कानून के खिलाफ़ है !

शान्ता––हैं ! क्या उनपर मेरा कोई अधिकार नहीं ? यह क्या कहते हो ? यह तुम्हारे आसामी नहीं, बल्कि मेरे हृदय-देवता है ! शरीर के स्वामी है। और प्राणों के रक्षक है ! नहीं, नहीं मुझे दूर न हटाओ ! अन्तिम-बार इन चरणों की शरण लेने दो !

सिपाही–(लापर्वाही से) चल, चल इधर चल !

(नरेन्द्र को धक्का देता है)

शान्ता––(चिल्लाकर) ओह ! स्वामी, प्राणनाथ, कहाँ जाते हो ? मुझे किसके आधार छोड़े जाते हो ! अरे···हाय !

नरेन्द्र—(आँसू पोंछते हुए) शान्ता धैर्य रक्खो. ईश्वर मददगार है ! वही अनाथों का नाथ और दुखियों का आधार है !

सिपाही–अरे चलता है या नहीं ?

(सिपाही धक्का देते हुए नरेन्द्र को लेजाना चाहते है ! शान्ता बेहोश होकर गिर पड़ती है !)

* प टा क्षे प *

पाचवां दृश्य

(स्थान—सेठ रामदास का मकान, सेठजी चारपाई पर बीमार पड़े हुए कराह रहे है !)

राम०—(स्वगत) किस्मत का कोई ठिकाना नही, राजा से रंक भिखारी से भगवान, छोटे-से बड़ा और बड़े से छोटा एक-क्षण-भर में हो जाता है ! जो कमल अपने प्रेमियो से मान करता है, शारीरिक पंखडियें प्रसार कर प्रमुदित होता है; वही सूर्यास्त के समय मुद्रित होकर सौन्दर्य विहीन हो जाता है । आकाश मे विचरण करने वाला घमण्डी बाण पलभर मे. सरके बल ज़मीन पर गिर पड़ता है । यह भाग्य है ! भाग्यचक्र एक बलवान शासक है जो सब पर समान आधिपत्य रखता है। आह ! मेरा भाग्य, उस फूटे हुए आइने की भाँति है, जो काम मे नहीं लाया जा सकता ! मेरा भाग्य ? अनाथ की तरह अशरण ! मौत की तरह भयकर ! और आकाश की तरह निराधार है । परमेश ! जगद्बन्धु ! दीन-दयाल ! अब तो इस मर्ण-तुल्य वेदना से उद्धार करो !

आह ! अभागा-पुत्र काल के कराल-गाल में दबा हुआ है ! बेचारी पुत्र-बधू शान्ता, आत्म-हत्या कर अपने पति के चरणो पर बलिदान हो चुकी ! और मै ? अभागा कर्म-हीन, जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ ! ज्वररूपी यमराज और वेदनारूपी भयंकर शत्रुओं का अत्याचार सह रहा हूँ ! उफ् ! कितनी भयानक-दशा है ! हृदय की आग शरीर को जलाए डालती है

नहीं ताकत नहीं पौरुष नहीं तनमें लहू बाकी !
नहीं उत्साह जीवन का न दिल में आरजू बाकी !!
हुई किस्मत खफ़ा मुझपर गमों ने आफ़तें ढाईं—
न दौलत ही रही घरमें न जग में आबरू बाकी !!

···मृत्यु की विकराल वेदनाओ ! मुझे छोड़ दो, मैंने अपने कर्मों का फल पालिया ! घर बर्बाद हुआ, चोर-डाकुओं ने सारी धन-दौलत अपहरण करली ! मुझे जीते-जी मार डाला। दर-दर का भिखारी बना दिया !

(खाँसता है)

ओह·····ओह·····उफ़ !!!

न दिन को चैन पड़ता है नहीं अब रात कटती है !
नहीं तबियत बहलती है कि जब किस्मत पलटती है !!
न कुछ भी साथ जायेगा, किये हा ! जुल्म दुखियों पर—
कि समझा यह नहीं मैंने कि मेरी उम्र घटती है !!

परन्तु—अब सिवा पश्चात्ताप की अग्नि मे जलने के कोई उपाय नहीं ! मेरी बड़ी कठिनता से उपार्जन की हुई विपुल-धन-राशि मुझे छोड़ गई ! आह ! उसने एकबार पीछे फिरकर भी न देखा। दया न की। उफ् ! मैंने एक-पैसा कभी भिखारी के हाथपर भी न रक्खा। अलमारियो मे हिफाजत से रक्खा ! पर हाय ! तू चल ही गई—अब कहाँ ढूँढ ? कहाँ पाऊँ ?

समझ में कुछ नहीं आता अन्धेरा-सा दिखाता है,
ये मेरा भाग्य ही मुझको रुलाता है, सताता है !

ओफ् ! यह असह्य-पीड़ा ? भयंकर वेदना ? अब नहीं सही जाती--भगवान ! अब अधिक न रुलाओ, मैंने करनी का फल·····' (खाँसता है) ओह····· !

(नौकर के साथ; डाक्टर तथा कम्पाउन्डर का प्रवेश)

राम०--(उठते हुए) डाक्टर साहिब·····!

डाक्टर-(कुर्सी पर बैठते हुए) कहिये, क्या हाल है ?

राम०—हाल ? हाल न पूछिये, सिर फटा जा रहा है ! दिल और सारा शरीर मुर्दा बन रहा है ! कोई ऐसी दवा दीजिये—जिससे दर्द बन्द हो ! दिल को चैन मिले, नींद आवे !

डाक्टर-अच्छा, आप लेट जाइयेगा ! (राम० लेट जाते हैं)

(डाक्टर सेठजी के फेफड़ों की परीक्षा करता है, कम्पाउन्डर सहायक बनता है ! और नौकर आश्चर्य से यंत्रों की ओर देखता है !)

डाक्टर-(परीक्षा के बाद) ओफ ! बड़ी भयंकर बीमारी है ! दिलका—रोग है ! टैम्परेचर भी एक सौ, साढ़े पाँच पर है ! बात यह है कि सेठ साहिब ऐसे रोगों की ····!,

कम्पो०--(बात काटकर मिलमिला मिलाते हुए) दवाएं भी हर कोई नहीं जानता ! हमारे डाक्टर साहिब, बड़े तजुर्बेकार और--खुश मिजाज आदमी हैं ! उसका तो आपको खयाल होगा—कि महेश बाबू के लड़के को

'थाइसिस' हुआ था ! दुनियाँ भर के हकीम-डाक्टरों ने जवाब दे दिया था ! उसकी हालत भी बड़ी खतरनाक थी ! मुँह से खून गिरता था-हद दर्जे की कमजोरी थी, लेकिन उसको भी आपके डाक्टर साहिब ने आराम करके ही छोड़ा !

राम०—(खाँसते हुए) बेशक ! पर वह तो मर गया सुना है !

डाक्टर—मरा तो ज़रूर ! मगर उस मर्ज़ से नहीं मरा, वह तो बिल्कुल आराम हो चुका था !

राम०—आपका कहना दुरुस्त है ! परन्तु—मेरे लिए क्या बात रही ? क्या मर्ज़ ला-इलाज़ है ! क्या आराम न होगा ?

डाक्टर—(लापर्वाही से) नहीं, ऐसी तो अभी कोई बात नहीं ! परन्तु·········अगर आप मुझ से इलाज करायेंगे, तो ?———

कम्पा०—(बीच में ही) सुनिये, सुनिये—अगर आप इस बात पर रजामन्द हों, कि सोलह रुपया डाक्टर साहिब की फ़ीस, और दो रुपया मेरा और दवा का दाम देना होगा—आठ दिन तक दोनों वक्त देखने की ज़रूरत होगी ! फिर बाद का दूसरे, तीसरे दिन ! समझे साहिब !—तो जैसा विचार हो······?

राम०—रहम, रहम करो भाइयो ! रहम करो, मैं अब इतना खर्च बर्दाश्त करने लायक नहीं रह गया ! बेटे ने शराब में बर्बाद कर डाला, डाकुओं ने डाका डाला, और मुझे मुहताज़ बना डाला, मेरा इलाज़ कीजिये, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा !

कम्पो०--(उपेक्षा से) वाह-वाह ! खूब रहे ! अरे ! भला जब घाड़ा दाने के साथ हो दोस्ती करेगा तो खायेगा क्या ?-पत्थर ! महीनो गुज़र जाते हैं मक्खियाँ मारते, तब कहीं जाकर·····! (सेठजी से) सेठजी ! जान है तो जहान है ! नहीं तो हर तरफ़ सूनसान है !

डाक्टर--नही, हम इससे कमपर काम नहीं कर सकेंगे--कम्पौन्डर--कमाउन !

(दोनों जाते हैं)

राम०--(दुख-भरे स्वर मे) आह ग़रीबी ! तेरा सब जगह अपमान है ! ग़रीबो का रक्षक तो केवल भगवान है। धन बिना पद-पद पर घृणा और तिरस्कार है। धन बिना जीवन भी बेकार है !--

नहीं जो पास में पैसा, तो यों बे मौत मरते हैं !
ग़रीबी, बेवशी पर जान को क़ुर्बान करते हैं !

* प टा क्षे प *

छटवां दृश्य

(स्थान--अदालत, जज, वकील, क्लर्क, असेसर वगैरह २) बैठे हुए है ! पूर्ण शान्ति विराजमान है। सिपाहियो के पहरे मे नरेन्द्र खड़ा है, एक ओर सेठ रामदास बीमारी की दशा मे खड़े हैं; दूसरी ओर ज्ञानचन्द्र-व-प्रभाचन्द खड़े हुए हैं !)

सरकारी वकील--नरेन्द्र ! तुम्हारे ऊपर खून का इल्ज़ाम लगा है

भारतीय-शासन-धारा की दफ़ा--'तीन सौ दो' में तुम्हारा चालान हुआ है ! क्या तुम अपनी ओर से सफ़ाई देना चाहते हो ?

नरेन्द्र—(उपेक्षा से) नहीं, नहीं, मैं अपनी सफ़ाई देकर-गवाहों की खुशामदें कर--न्याय और इन्साफ़ का गला घोंटना नहीं चाहता ! मेरा इन्साफ़ परवरदिगार की अदालत में होगा, मेरी सफ़ाई मेरी शुद्ध-आत्मा करेगी, और मेरा फैसला मेरी किस्मत करेगी !--

न जो मुमकिन कभी होता वह होता धर्म के बल से!
सचाई छिप नहीं जाती, कपट से, झूँठ से, छल से !!
नतीजा मिलगया आखिर जुआरी, चोर, लम्पट को—
नशे का रंग पोंछा था कि मेरे पाक अंचल से !!

राम०—(स्वगत) आह ! कलेजे पर आग जल रही है ! आँखें दृष्टि-सून्य होरही हैं ! दिमाग़ पागल होरहा है ! अब क्या होगा ? क्या मेरा बेटा····· मेरी अन्तिम आशा ! मेरे घर का चिराग़—सदा के लिए गुल हो जायेगा !-- अब न छूटेगा ?-आह ! क्या करूँ ?

नहीं है पास में दौलत जो सच्चा झूँठ कहलाये !
नहीं कलदार जब कर में तो कर्तब कौन दिखलाये ?
नहीं आशा दिखाती है मेरे पापी-हृदय को अब—
मेरा बेटा, मेरा बेटा, जो अब फाँसी से बचपाये !!

वकील- (दारोग़ा से) क्या तुम्हारे सामने ही नरेन्द्र ने प्रेम को गोली से मारा ?

दारोग़ा—(अदब के साथ) जी, हाँ ! चस्मदीद वाक़ा है ! इसने

गुस्से में आकर प्रेमचन्द्र को मार डाला !

जज---जब मुलजिम खुद तस्लीम करता है ! अपने क़सूर को मंजूर करता है ! तो सवालात करना, बेकार है ! इन फिजूल बातों से क्या सरोकार है ?

वकील--(हाथ उठाकर) बेशक, मुनासिब है ! मगर असेसर लोगो की राय की सख्त जरूरत है !

जज---यस ! (असेसरो से) कहिये आप लोगो की क्या राय है ?

असे० नं० १-सरकार को जो राय हो, हमारी राय मे मुलजिम नरेन्द्र का चाल-चलन अच्छा नही, उसने जरूर बेक़ुसूर प्रेमचन्द्र का खून किया है--जैसा कि वह मंजूर करता है ! इसलिए काबिले रिहाई के नही हो सकता।

नं० २—बेशक यही बात है ! नरेन्द्र पल्ले सिरे का शराबी और बदमाश है, शराबी को अपनी हालत पर खयाल होना, ग़ैर मुमकिन बात है ! ऐसे बदमाशो को सज़ा देना, अदालत का फर्ज है !

नं० ३--सच है, जब तक सजा न दी जायेगी, तब तक यह लोग मान ही नही सकते, दिन ब-दिन वे इन्साफ़ी बढ़ेगी !

नं० ४--मेरी राय मे जरूर सज़ा देनी चाहिये !

नरेन्द्र--आह ! बेहया किस्मत !—

अफसोस मुहब्बत का असर सब से ढल गया !
तकदीर के फिरते ही ज़माना बदल गया !!

रहम करो, रहम करो, परमात्मा के लिए रहम करो !

कि ग़लती होचुकी जो कुछ वह वापिस आ नहीं सकती !
मेरे इस खून की धारा उसे लौटा नहीं सकती !

वकील--नहीं, यह तुम्हारे केश का इन्साफ़ है ! तुम्हें छोड़देना, कानून के खिलाफ़ है !

जज---(लिख देने के बाद) नरेन्द्र ! दारोगा के दिये हुए सुबूतों से--और असेसरों की राय से--तुम्हारे ऊपर खून का इल्ज़ाम आयत होता है ! और इसलिए····· मै कानून की दफ़ा तीन-सौ दो के मुताबिक तुम्हे फाँसी की सज़ा देता हूँ !

राम०---(घबड़ाकर) आह ! यह क्या हुआ ?·····हाय···! (गिरकर मर जाते हैं, सब लोग घबड़ा कर खड़े हो जाते हैं, और झुककर रामदास की ओर देखते है !)

वकील--हँय ! हार्टफेल हो गया ?--मरगया !

नरेन्द्र--(विव्हलता से) पिता···जी पिताजी ! पिता···जी···!

(नरेन्द्र पिता के ऊपर गिर पड़ता है)

ज्ञान०---(आगे बढ़कर) उफ़् ! यह क्या हुआ ? सेठजी परलोक सिधार गये ?

जो करता जुल्म दुखियों पर नतीजा आज का कल है !
कि 'भगवत्' की अदालत में धर्म और न्याय का बल है !
न बाकी अब निशां कोई नहीं हमदर्द दुनियाँ में—
कि बेहद रंज सह मरना ये अत्याचार का फल है !!

(रामदास और नरेन्द्र की लाशपर सब लोग झुके रहजाते हैं, टेब्ला !!!)

समाप्त

प्रकाशकीय

'समाज की आग' लेखक की एक पुरानी रचना है। फिर भी हम अनुभव करते हैं, कि वह असफल नहीं। वस्तुतः ऐसी रचनायें समाज के लिए हितकारी हैं। इसके बाद लेखक की नवीन और सुन्दर कृति हम प्रकाशित करने की चेष्टा करेंगे, यदि पाठको ने हमे इसी प्रकार उत्साहित किया। यह कृति एक वीर-रस पूर्ण नाटक के रूप में होगी--

इसके प्रकाशन में जो-जो त्रुटियाँ असावधानी और शीघ्रता वश रह गई हैं। वह अगले संस्करण मे शुद्ध करदी जावेंगी। अतः क्षमा प्रार्थी हैं।

अन्त मे हम अपने उन प्रेमी-पाठकों को धन्यवाद देंगे, जिन्होंने पुस्तक छपने से प्रथम ही इतने आर्डर दिये, कि प्रथम संस्करण हाथो हाथ बिक जाने की हमे कल्पना करनी पड़ी है।

हाँ यदि परस्थित ने अवसर दिया तो शीघ्र ही हम लेखक की सुमधुर नवीन कविताओं का संग्रह "चाँदनी" के नाम से पाठकों के कर-कमलो मे भेंट करने की चेष्ठा करेंगे।

आशा है, स्नेही-जन सदैव हमे इसी प्रकार सहानुभूति द्वारा आभारी बनावेंगे। विशेष क्या!

श्री भगवत्-भवन
एत्मादपुर
ता० १५-१-३७ ई०

कृपेच्छु—
प्रकाशक